शुद्धिशास्त्र

लेखक
पं० राजाराम

आर्ष-ग्रन्थावली

शुद्धिशास्त्र

पं० राजाराम प्रोफैसर डी० ए० वी०
कालेज लाहौर संकलित

सन् १९२६ ई०   सम्वत् १९८३ वि०

प्रथमवार २०००]   [मूल्य ॥=)

बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर ।

शुद्धिशास्त्रमिदं पुण्यं गुरुदेवेन भाषितम् ।
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥१॥
य इदं धारयिष्यन्ति शुद्धिशास्त्र मतन्द्रिताः ।
ते जातीरुद्धरिष्यन्ति पङ्क्तिपावनपावनाः ॥२॥
देशकालविदः प्रज्ञा लोकेऽस्मिन् ये द्विजातयः ।
ते सभासु समाजेषु व्याख्यास्यन्ति समन्ततः ॥ ३
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तः ये शृण्वन्त्यपि मानवाः ।
चत्वारि तेषां वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥४॥
तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सद्वृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥५॥

विषय सूची

* ओ३म् *

प्रथमोऽध्यायः

शुद्धि पर गुरुशिष्यसंवाद

दो हिन्दु युवक—आज रामनवमी का पर्व दिन है, यह पुण्यपर्व मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के जन्म का स्मारक है। आज हिन्दूजाति के नेता स्थान २ पर सभाएँ करके अपने उन पूर्व दिनों का स्मरण कर रहे हैं, जब कि हमारी जाति उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई थी। सारे देश में वेदों की ध्वनि गूंजती थी, केवल एक वैदिक धर्म का ही झंडा सर्वत्र लहराता था। दूसरे किसी धर्म का इस देश में नाम निशान न था। और इस पर्व के दिन तो उस महापुरुष ने जन्म ग्रहण किया था, जिसने हिन्दुस्थान से बाहर निकल कर सिंहालय में जा धर्म का झंडा गाड़ा। समुद्र को बांध कर उस के कुक्षिस्थ द्वीप में जा आर्यों की विजयपताका उड़ाई और समुद्र की खाई से सुरक्षित शत्रुगढ़ में राम-दुहाई फेर दी।

सो यूं तो आज सर्वत्र सभा समाजों में ऐसी ही बातों पर विचार होंगे, पर जो विचार आज श्री **गुरुदेवजी** की सभा में होने वाले हैं, वह हिन्दु जाति के बड़े ही कल्याण के विचार हैं । उन विचारों को सुनने के लिए बड़े २ विद्वान् नेता वहाँ इकट्ठे होंगे। आओ हम भी श्रीगुरुदेवजी के कथा मन्दिर में प्रवेश कर उन विचारों को सुनें।

(एक विशाल कथाभुवन में व्यासगद्दी पर श्रीगुरुदेव और सामने की पंक्तियों में शिष्यवर्ग तथा श्रोतृगण बैठे हैं)

(सब मिल कर एक स्वर से–)

ओ३म्–यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधि तिष्ठति।
स्वर्यस्यच केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्व १० । ८ । १)

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवन माविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः॥

(श्वेता० उ० २ । १७)

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो

यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ।

योदेवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं सनो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु । यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरण महं प्रपद्ये ।

(मंगलाचरण के पीछे)

सिद्धेश्वर—(गुरुदेव का एक शिष्य)—भगवन् गुरुदेव ! धर्म पर आप के जो व्याख्यान हुए हैं, उन को सुन कर हमारे हृदय आनन्द से भर गये हैं। आप ने हमारी आँखें खोलदी हैं। हम आप के शिष्य और श्रोतृगण सभी इस एक ही निश्चय पर पहुँचे हैं, कि हमारा धर्म सर्वाङ्गपरिपूर्ण धर्म है। यह मनुष्य को मनुष्यमात्र का हितैषी बनाता है हृदयों की संकीर्णता मिटा कर उन में उदारता भर देता है। हम क्या हैं? कहाँ से आए हैं, कहाँ जाएँगे? इत्यादि प्रश्नों के, जो कि धार्मिक हृदयों में स्वभावतः उत्पन्न हुआ करते हैं, सन्तोषजनक उत्तर देता है। हाँ आत्मा और परमात्मा के

साक्षात् दर्शन का स्पष्ट सीधा मार्ग दिखलाता है। यह सत्य है, कि दुनिया का और कोई धर्म इस की पहुँच को नहीं पहुँच सका है। ऐसा उज्ज्वल धर्म तो सारी दुनिया का धर्म होना चाहिये था। अतएव हमारा जी चाहता है, कि इस को सारी दुनिया में फैलाएँ, पर ऐसी बात मन में लाते ही एक बड़ा भारी प्रश्न हमारे सामने आ उपस्थित होता है, आज्ञा हो, तो वह भी पूछ लें।

श्रीगुरुदेवजी—हाँ पूछो!

वि०—प्रश्न यह है, कि क्या ऐसे उज्ज्वल धर्म की दीक्षा हम मनुष्यमात्र को दे सकते हैं वा नहीं? जन्म के मुसलमान ईसाई वा यहूदी आदि हमारे धर्म को ग्रहण कर हिन्दु बन सकते हैं वा नहीं? और हिन्दुओं में जो अपने ही हिन्दु भाइयों के साथ छूतछात का विचार है, वह क्या रहना चाहिये वा नहीं? हिन्दुजाति के सम्मुख आजकल यह एक बड़ा भारी प्रश्न उपस्थित है। जिस की शास्त्रीय समालोचना हम आप से सुनना चाहते हैं।

मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के जन्म दिन को यह प्रश्न मैंने इस लिये उपस्थित किया है, कि इस विषय में हिन्दुधर्म की मर्यादा जानने में कुछ दूर तक तो हमें

भगवान् राम का चरित्र भी मार्ग दिखलाता है । जैसा कि उन्हों ने भीलराज गुह को गले लगाया, और भीलनी के हाथ से जल लेकर आचमन किया। इस से हिन्दुसंघटन की मर्यादा तो मर्यादापुरुषोत्तम ने दिखला दी, कि जाति का छोटे से छोटा अंग भी वैसा ही आदरणीय है, जैसा कि बड़ा, तौ भी इस प्रश्न का पूरा उत्तर पाने में हमारी बुद्धि संशय में पड़ कर डोलती है । आप ही हमारे संशयों को मिटाने वाले हैं, अनुग्रहदृष्टि डाल कर हमारे सारे संशय मिटा दीजिये ।

एक श्रोता—(खड़ा होकर) भगवन्! आपकी आज्ञा से मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूं। मेरा नाम वाचस्पति है। मैं कालेज में इतिहास का प्रोफैसर हूं। मुझे हिन्दु इतिहास में जो बात बड़े अन्धकार वाली प्रतीत होती है, वह यही है, जिसके विषय में आज प्रश्न हुआ है। देखिये—दुनिया के दूसरे सब मज़हब अपने धर्म के द्वार इतने खुले रखते हैं, कि किसी भी जाति वा धर्म का पुरुष उनमें प्रविष्ट हो सकता है किन्तु एक हिन्दु धर्म ही ऐसा धर्म है, जिसमें किसी दूसरी जाति का पुरुष प्रविष्ट नहीं होसकता। एक हिन्दु तो मुसल्मान भी बन सकता है ईसाई

भी बन सकता है, पर एक मुसल्मान वा ईसाई हिन्दु नहीं हो सकता । यही कारण है, कि हिन्दु शताब्दियों से घटते चले आरहे हैं । मुसल्मानों के आने से पहले कश्मीर, अफ़गानिस्थान, आदि देशों में केवल हिन्दु ही हिन्दु रहते थे। वहाँ अब हिन्दुओं की गिनती आटे में लवण के बराबर रह गई है। पञ्जाब में भी मुसल्मानों की संख्या हिन्दुओं से बढ़ गई है। कारण यह है, कि हिन्दुओं से निकास तो होता रहता है, प्रवेश नहीं होता ।

एक समुदाय से निकास और दूसरे में प्रवेश से बड़ा भारी भेद होजाता है। बुझारत कहा करते हैं, कि एक पीपल की दो शाखाओं पर तोतों के दो दल बैठे थे । एक शाखा वाले तोतों ने कहा, कि यदि तुममें से एक हमारी ओर आजाय, तो हम तुम्हारे बराबर हो जायँ । उत्तर में दूसरी शाखा वालों ने कहा, कि "यदि तुम में से एक हमारी ओर आजाय, तो हम तुम से दुगुने हो जायँ" । इस (५ और ७) की बुझारत में मैं तो हिन्दुओं के लिए एक दूसरी ही बुझारत समझता हूं । जहाँ पाँच तोते सात के मुकाबिले में अपने को दुर्बल देख सात में से एक को अपने में मिला कर उनके बराबर होना चाहते थे, वहाँ समझदार दूसरे दल ने उत्तर दिया, कि हम देने के स्थान लेना पसन्द

करते हैं और तुम्हें अपने बराबर करने के स्थान अपने पक्ष को तुमसे दुगुना बलवान् बनाना चाहते हैं। इस बुझारत को सामने रख कर देखिये, कि जो मुसल्मान बाहर से आकर पञ्जाब में रहने लगे, वे सात के मुकाबिले पर पाँच न थे, बल्कि हजार के मुकाबिले पर एक भी पूरा न था, तौ भी आज हिन्दुओं की संख्या उनके बराबर भी नहीं रही। यदि हिन्दुओं में प्रवेश का मार्ग खुला होता, तो हज़ार में मिलते ही एक इस तरह समा जाता, जैसे समुद्र में वर्षा की बूँदें समाजाती हैं, पर ऐसा न होकर उलटे हिन्दु ही मुसल्मानों में मिलते गए, क्योंकि हिन्दुओं में प्रवेश का कोई मार्ग नहीं था।

पञ्जाब में ईसाइयों की संख्या भी खूब बढ़ रही है और पञ्जाब में ही क्या, सारे ही हिन्दुस्थान में हिन्दुओं में से निकास ही है, प्रवेश कहीं नहीं।

पर मैं हैरान हो जाता हूं, जब पुराने इतिहास में इस बात को देखता हूं, कि हमारे देश में लाखों यूनानी, शक, हूण, पारद, पारसी आये, और हिन्दु जाति में इस तरह मिल गये, कि अब कोई नहीं बता सकता कि वह कौन हैं। इस पुराने इतिहास को देख कर मेरा तो दृढ़ निश्चय है, कि हमारे धर्म के द्वार यादि सब के लिए खुले न होते,

तो पूर्वकाल की जातियां हमारी जाति में कैसे समाजातीं। और यही विश्वास उन सारे नवयुवक हिन्दुओं का होजाता है, जो अपने प्राचीन इतिहास का अभ्यास करते हैं। पर हम अपने धर्मग्रन्थों से परिचित नहीं, और इस समय की चाल इसके विरुद्ध है, इस लिए हम चुप रह जाते हैं। आज मुझे बड़ा हर्ष हुआ है, कि इस प्रश्न की शास्त्रीय विवेचना श्रीमुख से सुनने का अवसर मिला है।

एक और श्रोता—भगवन्! दो मिन्ट कुछ कहने की मुझे भी आज्ञा दीजियेगा। प्रोफैसर साहिब ने यह बतलाया है, कि हिन्दुधर्म का द्वार पहले तो सबके लिए खुला था, अब बन्द होगया है। पर मैं कहता हूं, पहले बन्द था, अब खुल गया है। मेरे पूज्यपिता श्रीचन्द्रशेखर वन्द्योपाध्याय, जो एक बड़े सुयोग्य बैरिस्टर थे और जिनकी हिन्दुधर्म पर बड़ी निष्ठा थी, आपबीती सुनाया करते थे, कि 'जब मैं विलायत से बैरिस्टरी पास करके आया, तो ब्रादरी ने मुझे इस नाम पाने का यह इनाम दिया, कि मुझे ब्रादरी से अलग कर दिया। कारण यह बतलाया, कि तुमने समुद्रयात्रा की है। मैंने बहुतेरा कहा, कि समुद्रयात्रा तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की बांधी हुई एक मर्यादा है। पर मेरी बात किसी ने नहीं सुनी, और मुझे खारिज़ करही

दिया"। पर ऐसा धक्का मिलने पर भी उनकी अपने धर्म पर पूरी निष्ठा बनी रही। वे संस्कृत जानते थे, गीता का पाठ करते थे। उन्होंने तो अपना धर्म नहीं छोड़ा, पर हिन्दुओं ने उनको सारी आयु धक्का ही दिये रक्खा। गीता का पाठ और हिन्दुधर्म में निष्ठा तो उनकी कोई छीन नहीं सका, पर अपनी ब्रादरी में मिलने की कामना उनकी अन्तिम श्वास तक कामना ही बनी रही, पूरी न हुई। और अब देखिये, बिलायत वालों को कोई पूछता ही नहीं। धर्मशास्त्रियों के पुत्र विलायत जाते हैं, कोई प्रायश्चित्त भी नहीं करते। मिले मिलाए ही ब्रादरी में आते हैं। सम्बन्ध भी अच्छे घरों के उनको मिलते हैं। और यहाँ रहते हुए भी जो उच्च पदाधिकारी हिन्दू अङ्गरेजों के साथ खा पी लेते हैं, उनको कोई नहीं अलग करता। सो मैं बहुत पुराने समय की बात तो जानता नहीं, पर यह निःसन्देह है, कि पचास वर्ष पहले जितना अलग करने पर ज़ोर था, वह अब नहीं रहा। हां, यह अब भी है, कि जिनको पहले अलग कर चुके हैं, उनके साथ अभी वैसा ही बर्ताव है। इसीसे तंग आकर पिताजी की इच्छा के विरुद्ध भी हमने हिन्दुधर्म को तिलाञ्जली देकर ईसाइयों के साथ मेल-जोल कर लिया। मेरा नाम सतीशचन्द्र है,

और हम पांच भाई और तीन बहिनें हैं । इस समय हमारे पिताजी के परिवार में सब स्त्री पुरुष मिलाकर २९ जन हैं । हमारी तरह और भी कई परिवार इसी तरह धकेले जाकर ईसाइयों में मिले हैं । हमें तो हिन्दुधर्म से घृणा ही होचुकी थी, किन्तु अब उमेश बाबू की प्रेरणा से आपके उपदेश सुनकर फिर नये सिरे श्रद्धा उत्पन्न हुई है। और अब हम उस मर्म को समझे हैं, कि इतने धक्के खाकर भी क्यों हमारे पूज्य पिताजी की श्रद्धा हिन्दुधर्म में ही बनी रही । अब तो हम······इसके आगे अभी मैं कुछ नहीं कहता श्रीमुख से उत्तर सुनकर जो कहना है, कहूंगा ।

श्रीगुरु०—धर्माभिलाषी सज्जनो ! मुझे बड़ा हर्ष है, कि आप ऐसे प्रश्न मेरे सामने उपस्थित करते रहते हैं, जिनसे इस बात का पता लगता है, कि आपके हृदयों में धर्म और जाति का हित भरा हुआ है, और अपने शास्त्रों पर पूर्ण श्रद्धा है । श्रीविद्येश्वर ने जो रामनवमी के दिन यह प्रश्न उपस्थित किया, और मर्यादापुरुषोत्तम की एक मर्यादा की ओर दृष्टि दिलाई है, यह आपको इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर पाने में सहायता देगी ।

आप सब शुद्ध भावना के साथ अपने अपने हृदय से यह

पूछें, कि यदि यही प्रश्न मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख उपस्थित होते, अर्थात् कोई अहिन्दु आकर यह प्रश्न करता—"महाराज ! क्या मैं आपकी धर्म-मर्यादाओं का पालन करने के लिए हिन्दुधर्म में प्रविष्ट होसकता हूं वा नहीं ? और आप मुझे हिन्दुधर्म में दीक्षित कर अपनी शरण में ले सकते हैं वा नहीं ?" तो वे क्या उत्तर देते ? और दूसरी बात यह पूछें, कि जिनको अब हम अछूत बनाये हुए हैं, इनके पूर्वजों में से किसी ने बन में घूमते हुए श्रीराम का आतिथ्यसत्कार करने के लिए अपना दुपट्टा बिछाकर उसपर फल धरे होंगे, तो क्या उन्होंने उस आतिथ्य को स्वीकार किया होगा ? अथवा यूं समझो, कि अब यदि श्रीरामचन्द्रजी यहाँ आजायँ, और उनके चरण छूने के लिए एक अछूत हिन्दु आगे बढ़े, तो वे उसे छुएंगे, वा परे हटा देंगे ? इन प्रश्नों से जैसा विश्वास तुम्हारे हृदयों में उपजे, उसे मन में रक्खो, और फिर शास्त्र के उत्तर को सुनो, आशा है आपको अपने शुद्ध हृदय के उत्तर शास्त्र से मिले हुए प्रतीत होंगे।

प्रोफैसर श्रीवाचस्पति ने ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दुजाति का जो घाटा दिखलाया है, उसे सुनकर आप सब ने दुःख अनुभव किया है, किन्तु यह घाटा अभी सारा नहीं

दिखलाया गया। इतिहास बतलाता है, कि काबुल, कन्धार, ईरान, यूनान, तुरकस्थान आदि प्रदेशों के वासियों के पूर्व आर्य थे, और आज कल की योरुप की जातियां भी प्राचीन आर्यों की ही सन्तानें हैं। इस विषय पर भी अपने विचार हम प्रमाणसहित आपके सम्मुख रक्खेंगे। और श्रीसतीशचन्द्र ने अपने भाषण के अन्त में जो रहस्य रक्खा है, उसे हम भी अभी रहस्य ही रखते हैं। आशा है इस विषय में शास्त्र का रहस्य खुलने पर वह रहस्य भी खुल जायगा, और वही आपके अगले उद्योगों का मङ्गलाचरण होगा। सो अब आप सब सावधान होकर सुनें।

द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् वेद के आदेश, उपदेश और संदेश।

श्रीगुरुदेव—धर्मप्रिय सज्जनवृन्द! ध्यान देकर सुनो, वेद हमारा वह पवित्र धर्मपुस्तक है, जिसमें मनुष्य के शुद्ध धर्म का उपदेश है, किसी मतमतान्तर का नाम नहीं, क्योंकि जब वेदों का प्रकाश ऋषियों पर हुआ, उस समय इस जगत् में न मुसल्मान थे, न ईसाई, न यहूदी, और न साइबी। इसलिए ऐसे वचनों की तो उसमें

सम्भावना ही नहीं होसकती, कि 'वेद का सन्देश यहूदियों, ईसाइयों और मुसल्मानों तक पहुंचाओ'। सो वेद के सम्मुख तो एक मनुष्य जाति है, उस सारी ही मनुष्यजाति के लिए उसका उपदेश है, जैसा कि कहा है—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् । तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभिसंनवन्ते ॥ (ऋ० १०।७१।३)

पूर्वपुण्यों के द्वारा लोगों ने वाक् (वेदवाणी को प्राप्त करने) की योग्यता प्राप्त की, और तब उन्होंने ऋषियों में प्रविष्ट हुई उस वाक् को ढूंढ पाया । **उस (वेदवाक्) को लाकर उन्होंने सबमें फैला दिया ।** जो सात छन्दों में गाई जाती है ।

कैसा स्पष्ट वचन है । वेद के प्रकाश के समय वेदवादियों ने इस धर्म को मनुष्यमात्र का धर्म समझा, इसलिए किसी को इससे रोकना तो दूर रहा, अपितु स्वयं अपने प्रयत्न से उन्होंने इसको सबमें फैला दिया ।

इस वाक्य के अर्थ में कोई विवाद भी नहीं, श्री-सायणाचार्य भी इसकी व्याख्या में लिखते हैं—"**तां**

वाचमाभृत्याहृत्य बहुषु प्रदेशेषु व्यकार्षुः सर्वान् मनुष्यानध्यापयामासुरित्यर्थः"=उस वाणी को लेकर उन्होंने बहुत प्रदेशों में फैला दिया, अर्थात् सारे मनुष्यों को पढ़ा दिया।

सज्जनो! यह एक ही वचन इस बात का पर्याप्त प्रमाण है, कि वैदिकधर्म का प्रचार मनुष्यमात्र में होना चाहिये, जैसा कि पहले होचुका है।

शिष्य—भगवन्! निःसन्देह इस प्रमाण को सुनकर हमारे हृदय गद्गद होगये हैं। आप उपदेश देते हुए जब कहा करते थे, कि हिन्दुधर्म सार्वभौम (आलमगीर) धर्म है, तो हमारे मन में यही आता था, कि यह धर्म तो बेशक सारी दुनिया में फैलने योग्य है, पर यह सन्देह होता था, कि इसे सार्वभौम बनाने की चेष्टा तो आरम्भ से लेकर कभी भी हिन्दुओं ने नहीं की होगी। अब इस प्रमाण को सुनकर तो यही निश्चय होता है, कि आदि में न्यून से न्यून एक बार तो इसके प्रचारकों ने इस धर्म का सन्देश सारे मनुष्यों तक पहुँचा दिया था, और सभी मनुष्य इस धर्म के अनुयायी थे। क्या इस ऐतिहासिक घटना की पुष्टि में कोई ऐसा प्रमाण भी हमारे पास है, जिससे विरोधी भी इस बात को मानलें।

उत्तर—जिस ऐतिहासिक घटना का साधक-प्रमाण तो हो और बाधक-प्रमाण कोई न हो, वह प्रमाण मानी जाती है। पर सौभाग्य से इसके तो पोषक-प्रमाण हमारे ग्रन्थों में तो हैं ही, किन्तु विरोधियों के ग्रन्थों में भी हैं, सुनो—

इञ्जील की साक्षी—"और जैसे उसने अपने पवित्र ऋषियों के मुख से जो आदि से होते आये हैं, कहा" (लूक अ०, १, आ० ७०) इधर यह आयत स्पष्ट पता देती है, कि ईश्वर का सन्देश पहुँचाने वाले ऋषि आदि-सृष्टि में हुए थे। उधर वेद बतलाता है, कि वह सन्देश वेद का था।

कुरानशरीफ की साक्षी—"(आदि में सब) लोग एक ही दीन (धर्म) रखते थे। फिर (आपस में लगे भेद करने, तो) परमात्मा ने पैगम्बर भेजे, जो ईमान वालों को परमेश्वर का शुभ सन्देश सुनाते, और (लोगों को परमेश्वर का) डर दिलाते।" (सूरत अलबकर रकूअ २५) यह वचन कैसा स्पष्ट इस बात का साक्षी है, कि आदि में सारी दुनिया का एक ही धर्म था, और यदि उस आदि धर्म पर लोग टिके रहते, तो परमेश्वर को नये पैगम्बर भेजने की कोई आवश्यकता न होती।

यह दोनों प्रमाण आदि-सृष्टि में परमात्मा से मिले उस सच्चे धर्म का पता देते हैं, जो सारी दुनिया का एक ही धर्म था। और जो उस समय उन प्रदेशों से लुप्त होचुका था, जहाँ हज़रत मसीह और हज़रत मुहम्मद ने अपना अपना प्रचार किया; पर वे दोनों प्रचारक इस बात को जानते थे, कि हमारे पूर्वजों तक एक ऐसे धर्म का उपदेश पहुँचा था, जो सार्वभौम था, और जिसको कि यहाँ के लोग भुला बैठे हैं।

प्रश्न—तो क्या अब जो भुला बैठे हैं, उनको फिर इस सार्वभौमधर्म में प्रविष्ट कर हिन्दु बना सकते हैं, इस विषय का भी साक्षात वेद में कोई प्रमाण है वा नहीं ?

उत्तर—हाँ है और बड़ा स्पष्ट है, ध्यान देकर सुनो। यह तो एक मानी हुई बात है, कि दुनिया के सभी धर्मों से वैदिकधर्म पहले का है, इसलिए वेदों में किसी मत-मतान्तर का तो नाम होसकता ही नहीं। और आप यह भी जानते हैं, कि हमारा वैदिक नाम आर्य है। सो वेद में मनुष्यों के आर्य और दस्यु वा व्रती और अव्रती दो भेद किये हैं। और यह आदेश दिया है, कि आर्यों का धर्म है, कि वे अनार्यों को भी आर्य बनाएँ, अव्रतियों को व्रती बनाएँ, इसीमें सबका कल्याण है।

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् । शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥

(ऋ० १ । ५१ । ८)

हे इन्द्र ! आर्यों को अपनाओ, और जो व्रतहीन दस्यु हैं, उनको सीधे मार्ग पर चलाकर आर्य का साथी बना । तू शक्तिमान् है, अपने पूजक आर्य को आगे आगे बढ़ा, तेरी इन सारी महिमाओं को मैं युद्धों, यज्ञों और उत्सवों में प्यार करता हूं ।

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वताँ अपः । सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधिक्षमि ॥

(ऋ० १० । ६५ । ११)

(पृथिवी पर) अन्न, गौ, घोड़े, ओषधि, वनस्पति, क्षेत्र, पर्वत और जलों को उत्पन्न करते हुए और द्यौ में सूर्य को उदय करते हुए दानशील देवता (दिव्यशक्तियाँ) सारी पृथिवी पर आर्यव्रतों को फैलाते हैं ।

इस मन्त्र में दिव्यशक्तियों का स्वभाव यह बतलाया है, कि वह जैसे सारी पृथिवी के लिए सूर्य का प्रकाश लाती हैं, वैसे मनुष्य के हृदय में वह भाव (मैटर) भरती हैं, जो सत्य (आर्यव्रतों) के ग्रहण की ओर मनुष्य को झुकाता है। इससे उन शक्तियों के अधिष्ठाता परमात्मा का यह अभिप्राय सिद्ध होता है, कि सारी पृथिवी पर सभी लोग आर्य बन जाएँ।

आसंयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहती-ममृध्राम्। यया दासान्यार्याणि वृत्राऽकरो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि॥ (ऋ० ६।२२।१०)

हे इन्द्र! शत्रुओं पर विजय पाने के लिए हमें संयम में रखने वाला और सदा बना रहने वाला बहुत बड़ा कल्याण दे। हाँ वह कल्याण, जिससे कि तू दासकुलों को आर्यकुलें बनाता हुआ मनुष्य के लिए वृद्धि के हेतु बना देता है।

यहाँ दासकुलों को आर्यकुलें बनाने का स्पष्ट उपदेश है, और यह भी कि दासकुलों को आर्यकुलें बनाने में ही मनुष्यों का भला है। इस मन्त्र से यह कैसा स्पष्ट है, कि वैदिकधर्म दासप्रथा का सर्वथा विरोधी है और आर्यों का

कर्तव्य बतलाता है कि दासकुलों को दासभाव से छुड़ाकर आर्यकुल बनाएँ ।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ (ऋ० ९ । ६३ । ५)

उत्साह से भरपूर रहकर इन्द्र के नाम को बढ़ाओ, अपना स्वत्व छीनने वालों को मार हटाओ और सब को आर्य बनाओ ।

यह है वेद का उपदेश, संदेश और आदेश, इसे भूलकर हमने बहुत बड़ा घाटा उठाया है अब इसे ग्रहण कर उत्साह से आगे बढ़ो, और सारे विश्व को आर्य बनाकर रहो ।

शिष्य—भगवन् ! सारे विश्व को आर्य बनाने का वेद का आदेश सुन कर हमारे हृदय प्रफुल्लित होरहे हैं । अब हम श्रीमुख से यह सुनना चाहते हैं, कि हमारे ही धर्मपथ पर चलने वाली जो हीनजातियाँ हैं, उन से कैसा बर्ताव करने का वेद आदेश करता है ।

गुरु—यह तो तुम जानते ही हो, कि हमारी धर्ममर्यादा के अनुसार सभी हिन्दु चार ही वर्णों में विभक्त हैं । सो इन चारों का परस्पर बर्ताव कैसा होना चाहिये, सुनो—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्या शूद्रो अजायत ।

(ऋ० १० । ९० । १३, यजु० ३१।११)

ब्राह्मण इस (मानव समाज) का मुख है, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य ऊरू (रानें) और शूद्र पाओं हैं ।

यूँ तो इस मन्त्र की व्याख्या बहुत बड़ी है, संक्षेपतः यह समझो, कि सारा हिन्दु समाज मानो एक शरीर है, चारों वर्ण उसी एक शरीर के भिन्न २ अंग हैं। इसलिये हर एक हिन्दु को चारों ही वर्ण अपने अंग जान, उन से अपने अंगों का सा बर्ताव, और अपने अंगों का सा प्रेम करना चाहिये, और सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

(यजु० १८ । ४८)

हे भगवन् ! हमारे ब्राह्मणों में तेज स्थापन कर, हमारे क्षत्रियों में तेज स्थापन कर, हमारे वैश्य और शूद्रों में तेज स्थापन कर और हे भगवन् ! मुझ में अपने तेज से तेज डाल ।

देखिये एक हिन्दु की हिन्दु समाज के चारों ही अंगों को एक तुल्य तेजस्वी बनाने की यह कैसी उज्वल प्रार्थना है। यहां किसी भी वर्ण के हिन्दु को नीचे दबाने वा पाददलित करने की गन्ध मात्र नहीं, प्रत्युत अपने समान तेजस्वी बनाने की प्रार्थना है, जिस से कि वह अपने वा बेगाने किसी से दलित हो ही न सके।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।

(अथर्व १९ । ६२ । १)

हे भगवन् ! जिस को तूं ने आंखें दी हैं, उस सब का मुझे प्यारा बना, चाहे वह शूद्र हो वा द्विज ।

देखो यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों ही वर्णों के साथ कैसा शुद्ध प्रेम भाव दिखलाया है ।

शिष्य—इस वैदिकमर्यादा को जान कर यह तो हमें निश्चय हो गया है, कि हमारी जाति के सभी अंग एक समान तेजस्वी होने चाहिये थे, उन में से किसी अंग को निस्तेज हो कर दब जाना वैदिकमर्यादा के विरुद्ध हुआ है । पर अब यह बतलाइये, कि चाहे किसी ही कारण से हो, पर जब कोई अपना अंग गिरा हुआ माना गया हो, तब उन के विषय में वेद का क्या आदेश है ?

गुरु—सोम्य ! पहले तो यह नियम स्मरण रक्खो, कि भूल का पता लग जाने पर फिर उसी भूल में नहीं पड़े रहना चाहिये । यदि यह भूल हुई है, तो इसे मिटा डालो । और सुनो वेद का भी यही आदेश है ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥

(ऋ० १० । १३७ । १)

हे देवो ! हे देवो (ब्राह्मणो) जो नीचे गिर गये वा गिरा दिये गये हैं, उन को फिर उन्नत करो । हे देवो हे देवो ! जो पाप करके पतित हो चुका है, उसे फिर नया जीवन दो ।

सुनो सज्जनो ! तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर में यह हैं वेद के उपदेश, इन के सामने अपने सिर झुकाओ । आज की कथा यहीं समाप्त होती है । कल तुम्हें धर्मशास्त्रों के प्रमाण सुनाएँगे । (अरति हो कर सभा विसर्जन)

द्वितीयोऽध्यायः * ।

गुरु—प्रिय श्रोतृवर्ग ! वेद का संदेश कल आप सुन चुके हैं, आज एकाग्र मन होकर स्मृतियों के उपदेश सुनिये।

स्मृतियों का सब से पहला संदेश यह ध्यान रक्खो, कि धर्म में परम प्रमाण वेद ही है। वेद धर्म का शुद्ध स्रोत है, इस लिये वेद में जो बातें साक्षात् कही हों, उन को तो परम प्रमाण ही मान लो, और उन्हीं को हिन्दुओं का शुद्ध धर्म समझो। स्मृति उन्हीं का विस्तार करेगी, उन के आशय के विरुद्ध कभी नहीं कहेगी। और यदि कोई स्मृति विरुद्ध कहे भी, तो उस अंश में वह प्रमाण नहीं मानी जायगी, जैसा कि कहा है—

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां परमाणं परमं श्रुतिः ॥

(मनु० २ । १३)

धर्म का जानना उनका सफल होता है, जो अर्थ और काम में फँसे हुए नहीं हैं, और जो धर्म को जानना चाहते हैं, उन के लिए परम प्रमाण श्रुति (वेद) है।

---

*प्रतिदिन आदि में मंगलाचरण और अन्त में आरति पूर्ववत्

धर्म शुद्धिमभीप्सद्भिर्न वेदादन्यदिष्यते ।
धर्मस्य कारणं शुद्धं मिश्रमन्यत् प्रकीर्तितम् ॥

धर्म की शुद्धि चाहने वालों के लिए वेद से भिन्न कोई शास्त्र अभिमत नहीं, क्योंकि वेद धर्म का शुद्ध स्रोत है, और दूसरा सब मिला हुआ कहा गया है (अर्थात् उन के कथन में राग और द्वेष वा भय और प्रलोभन रूपी मैल की भी संभावना है) ।

सो जब साक्षात् भगवान् वेद ने मनुष्यमात्र को धर्म में दीक्षित करने की आज्ञा दे दी, तो फिर स्मृतियों का तात्पर्य उस के विरुद्ध हो ही नहीं सकता। सो सुनो, जैसा कि स्मृतियाँ उक्त वैदिक मर्यादा की ही पुष्टि करती हैं—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्न गोमही वासस्तिलकाञ्चन सर्पिषाम् ॥
(मनु० २ । २३३)

जल, अन्न, घी, तिल, सोना, गौ, पृथिवी इत्यादि जितने प्रकार के दान हैं, इन सब से एक दान बढ़ कर है, वह है वेद का दान॥ यह वेद का दान क्या है? जो वेद पढ़े नहीं, उन को वेद पढ़ाना और जो वैदिकधर्म से परे हैं, उन को वैदिकधर्म की शरण में लाना ॥

और सुनो भगवान् देवल का उपदेश है—

बलाद् दासीकृता येच म्लेच्छचाण्डाल दस्युभिः ।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥१७॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनम् ॥१८॥
तत्स्त्रीणां तथा संगस्ताभिश्च सह भोजनम् ॥१९॥
चान्द्रायणं त्वाहिताग्नेःपराकस्त्वथवा भवेत् ॥२०

जिन को म्लेच्छों चांडालों वा दस्युओं ने बलात् अपना दास बना लिया हो,और उससे गोहत्या जैसे अशुभ कर्म भी करवाये हों ॥१७॥ अपनी जूठ मंजवाई हो, बल्कि उन की जूठ खाई भी हो ॥१८॥ उनकी स्त्रियों के साथ संग भी किया हो, उन के साथ खाया भी हो ॥१०॥ तो आहिताग्नि भी ब्राह्मण एक चान्द्रायण वा पराक करके शुद्ध हो जाता है।

जो हिन्दुधर्म गोघातियों में रह कर अपने हाथ से गोहत्या करने वाले और उन गोघातियों की जूठ खाने वाले भी ब्राह्मण को शुद्ध करके फिर पूर्ववत् पवित्र ब्राह्मण बना सकता है, क्या उस में मुसलमान और ईसाइयों को शुद्ध करके हिन्दु बना लेने की शक्ति नहीं है, यह कौन संभावना कर सकता है। यह भी देश काल के अनुसार

प्रायश्चित्त है, वस्तुतः हिन्दुधर्म में तो इतना बल है, कि वह एक क्षण ही में शुद्ध कर सकता है । सुनो—

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत् पयः पिबेत् ।
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥

कपिला गौ का धारोष्ण (जब तक उस में धारा की गर्मी है) दूध पिये, यह व्यास का माना हुआ कृच्छ्र व्रत है, यह चंडाल को भी शुद्ध कर देता है ।

अत्रि ऋषि तो और भी बलपूर्वक कहते हैं—

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ।
पूयन्ते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोपि ये ॥

ज्ञाति के लोग अंगीकार करलें, और ब्राह्मणों का अनुग्रह हो, तो पापी से पापी महापातकी भी पवित्र हो जाते हैं ।

स्मृति शिरोमणि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं अपने श्रीमुख से कहते हैं—

मां हि पार्थमुपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परांगतिम् ॥

(गीता ९ । ३२)

मेरी शरण पकड़ कर हे अर्जुन ! स्त्रियें, वैश्य और शूद्र ही नहीं, जो पापयोनि जातियां (जरायमपेशा जातियां) हैं, वे भी तर जाती हैं ।

इस उपदेश बल्कि आदेश में भगवान् श्रीकृष्ण का यह अभिप्राय कैसा स्पष्ट प्रतीत हो रहा है, कि जरायमपेशा जातियों में भी मेरे धर्म का प्रचार करो और उन को धर्म में दीक्षित करके भगवान की शरण में लाओ । जिस से उन का कल्याण हो और तुम इस पुण्य के भागी बनो ।

जो धर्म पापयोनियों को भी अपनी शरण में लेने के लिए प्रेम की भुजा फैलाए हुए है, वह सब को ही अपनी शरण देने को तय्यार है । इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है, कि धर्मशास्त्रों के अनुसार भी हिन्दु धर्म का द्वार मनुष्यमात्र के लिए खुला है । अतएव हिन्दु सम्प्रदायों ने भी सब ने ही हिन्दुधर्म का द्वार मनुष्यमात्र के लिए खुला रक्खा है ।

१—**वैष्णव सम्प्रदाय** के प्रसिद्ध सन्त महात्मा गोसाईं **तुलसीदास** जी लिखते हैं—

श्वपच शबर खल यवन जड़ पामर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥

श्वपच=चंडाल, चंडाल भी ऐसे जो कुत्ते का मांस भी खा लेते हों। शबर=भील। यवन=मुसल्मान आदि। राम कहत पावन परम अर्थात् राम का नाम लेने से न केवल स्वयं शुद्ध हो जाते हैं, किन्तु औरों को शुद्ध करने के योग्य हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत (२। ४। १८) में भी कहा है—

किरात हूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीर कङ्का यवनाः खसादयः। येऽन्ये च पापा यदुपाश्रया-श्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर (अहीर) कंक, यवन, खस आदि तथा और भी जो धर्मबाह्य लोग हैं, वह जिस श्रीकृष्ण की शरण पकड़ने से शुद्ध होते हैं, उस प्रभु को हमारा नमस्कार है।

अगस्त्य संहिता में आया है—

शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विजसेवकाः।
स्त्रियः प्रतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः॥१॥
लोकाश्चाण्डालपर्यन्ताः सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः।

श्रुतिर्ब्रह्माह षवड़्र्णं स्मृतिर्वर्णद्वयात्मकम् ॥२॥
षड्वर्णं ब्राह्मणादीनां त्रयाणां यद्द्विवर्णकम् ।
तदन्येषां देशिकेन वक्तव्यं तारकं परम् ॥ ३ ॥

शुद्ध व्रतों वाले शूद्र जो अपने धर्म पर चल कर द्विजों की सेवा कर रहे हैं, पतिव्रता स्त्रियें, और वे लोग भी जो कि प्रतिलोमज (उच्च वर्ण की स्त्री मे हीन वर्ण की सन्तान) और अनुलोमज (हीन की स्त्री मे उच्च वर्ण की सन्तान) हैं ॥१॥ बहुत क्या ! चण्डालपर्यन्त सभी लोग इस धर्म के अधिकारी हैं । श्रुति मन्त्र को छः अक्षरों का बतलाती है (अर्थात ओं रामाय नमः) और स्मृति दो अक्षरों का (अर्थात राम) ॥ २ ॥ वैष्णव धर्म के आचार्य को चाहिये, कि छः अक्षरों का यह तारक (तारने वाला) मन्त्र द्विजों को उपदेश करे, द्विजों से भिन्न जो भी हैं, उन सब को दो अक्षरों का तारक मन्त्र (राम) उपदेश करे ॥३॥

स्कन्दपुराण में आया है—

विष्णुभक्तिसमायुक्तो मिथ्याचारोप्य नाश्रमी ।
पुनाति सकलाँल्लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः ॥१॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदिवेतरः ।

विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥२॥
दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकः पुरा ।
समाश्रयेदादिदेवं श्रद्धया शरणं हि यः ॥३॥
निर्दोषं विद्धि तं जन्तुं प्रभावात् परमात्मनः ॥

पहले जो न तो किसी वर्ण में है, न किसी आश्रम में है, वह भी जब श्रद्धा भावना से विष्णु की भक्ति में प्रवृत्त होता है, तब उदय होते हुए सूर्य की नाईं सब लोकों को पवित्र करता है ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा इन चारों वर्णों से बाह्य भी हो, जो विष्णु की भक्ति से युक्त है, उसे उत्तम से उत्तम समझो ॥ २ ॥ पहले यदि दुराचारी भी रहा हो, सब कुछ खाता पीता भी रहा हो, कृतघ्न भी रहा हो, नास्तिक भी रहा हो, पर जब उस ने श्रद्धा पूर्वक विष्णु की शरण पकड़ली, तो अब उसे उस भक्ति की महिमा से सारे दोषों से शुद्ध हुआ जानो ।

२–शैव धर्म का द्वार भी सब जातियों के लिए खुला है, जैसा कि ब्रह्मोत्तर खण्ड में षडक्षर और पञ्चाक्षर मन्त्र के प्रकरण में कहा है—

महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ।

प्रणवेन विना मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरो मतः ॥१॥
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः ।
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ॥२॥

न कालनियमश्चात्र जप्यः सर्वैरयं मनुः ।
वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥३॥

यह छः अक्षर का मन्त्र (ओं शिवाय नमः) महापातक रूपी वनों के जला डालने वाला वनाग्नि है । 'ओ३म्' के बिना यह मन्त्र पांच अक्षरों वाला (शिवाय नमः) माना गया है ॥१॥ इस मन्त्र को मोक्षार्थी, स्त्री, शूद्र और वर्ण-संकर सभी जप सकते हैं । इस के लिए न कोई दीक्षा है, न होम है, न संस्कार है, न तर्पण है ॥ २ ॥ न ही इस के लिए काल का कोई नियम है । इस मन्त्र को वैश्य शूद्र भक्तियुक्त म्लेच्छ वा और भी जो नाम मनुष्य हैं सभी जप सकते हैं और जपना चाहिये ।

वेदान्तदर्शन पर श्री कण्ठाचार्य ने जो भाष्य किया है, उस के प्रथम श्लोक की व्याख्या में श्री अप्पयदीक्षित (जो मीमांसाशास्त्र के धुरन्धर पण्डित हुए हैं) शिव नाम की

महिमा में ये दो प्रमाण देते हैं, जिन में से पहला प्रमाण श्रुति का यह है—

अपिवा यश्चण्डालश्शिव इति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह भुञ्जीत ।

हाँ जो चाण्डाल भी 'शिव' यह वाणी कहे, उसके साथ सम्भाषण करे, उसके साथ निवास करे, उसके साथ खाए—

दूसरा प्रमाण पुराण का यह है—

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गा-दघमाशु हन्ति तत् ।

दो अक्षर का (शिव) यह नाम प्रसंग से एकबार भी किसी भी मनुष्य के मुख से निकले तो उस के सारे पापों को झटपट नष्ट कर देता है।

इसी प्रकार दूसरे हिन्दु सम्प्रदायों का द्वार भी मनुष्य-मात्र के लिए खुला है। परमात्मा के नाम ध्यान की पावनी शक्ति पर जैसा भरोसा हिन्दुओं में पाया जाता है, वह कदाचित ही किसी अन्य धर्मियों में पाया जाता हो। जैसा कि अग्निपुराण अध्याय २६५ में कहा है—

ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पाप कर्मणाम् ॥२१

श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुध्यति ।
आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुःफलं हरिः२२

ध्यान के सदृश पाप कर्मों का शोधने वाला और कोई नहीं ॥ २१ ॥ चंडालों में मिल कर खाता हुआ भी, ध्यान से शुद्ध हो जाता है । आत्मा ध्याता है, मन ध्यान है, और विष्णु ध्येय (ध्यान के योग्य) है इस का फल भी साक्षात विष्णु की प्राप्ति है ।

ऐसे स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी क्या हमें दूसरी जातियों को अपना धर्म देने में कोई संकोच करना चाहिये, नहीं २ कदाचित नहीं । जो कोई संकोच करेगा, वह जाति और धर्म से द्रोह करेगा । देखो इस संकोच से सहस्रों हिन्दु प्रति वर्ष स्त्रियों के पीछे हिन्दु धर्म का त्याग करते रहे । जब कि स्त्रियों के विषय में हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार शुद्धि का द्वार और भी खुला है, पर आज की कथा यहीं समाप्त करते हैं, स्त्रियों के विषय में कल सुनाएँगे ।

तृतीयोऽध्यायः ।

हिन्दु सभ्यता में स्त्रियों का स्थान ।

श्रीगुरु०—कल हमने स्त्रियों की शुद्धि के विषय में कहने

की प्रतिज्ञा की थी, सो एकाग्र मन हो कर सुनो । स्त्रियों के विषय में तो हिन्दुशास्त्रों की यह मर्यादा है, कि स्त्री पर अपने पति के शुभ गुणों का प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है, इस लिए स्त्रियाँ हीनजाति की भी द्विजों के घरों में आकर वैसे ही उच्च गुणों वाली बन जाती हैं । जैसा कि भगवान् मनु कहते हैं—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

(मनु० २ । २४०)

स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म मर्यादा, शौच (सफाई) सुभाषित (नसीहत) और सब प्रकार के शिल्प (हुनर) हर एक जगह से ले लेने चाहिये ॥

आगे ९ वें अध्याय में उदाहरणों सहित और भी स्पष्ट किया है । जैसा कि—

यादृग् गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥२२॥
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।

शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥
एताश्चान्याश्चलोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४

स्त्री जैसे गुणों वाले पति से यथाविधि संयुक्त हो, वैसे गुणों वाली स्वयं हो जाती है, जैसे नदी समुद्र से ॥२२॥ नीच योनि में उत्पन्न हुई **अक्षमाला** वसिष्ठ के साथ और **शारंगी** मन्दपाल के साथ युक्त हुई जगत् में पूजनीय हो गई ॥२३॥ ये तथा और भी नीच जाति की स्त्रियें अपने २ पतियों के शुभ गुणों से इस लोक में उच्चता को प्राप्त हुई हैं ॥२४॥ आगे चल कर इसी बात की पुष्टि करते हुए फिर लिखा है—

विशिष्टं कुत्रचिद् बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित् ।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥

(मनु० ९ । ३४)

कहीं बीज की प्रधानता है, कहीं स्त्रीयोनि की, हाँ जहाँ दोनों सम (गुणों वाले) हों, वह सन्तान तो सब से उत्तम मानी है ।

इस श्लोक पर व्याख्या करते हुए मेधातिथि और कुल्लूकभट्ट लिखते हैं, "बीज की प्रधानता व्यास और ऋष्यशृङ्ग आदि के विषय में मानी गई है, जो ब्राह्मण के बीज के कारण अब्राह्मणी माता की कुक्षि में से भी जन्म पाकर ब्राह्मण हो गये और स्त्रीयोनि की प्रधानता नियोग में मानी जाती है, जैसे ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न हुए भी धृतराष्ट्र आदि क्षत्रिय हुए"।

इन उदाहरणों से ये दोनों व्याख्याकार मनु के इस श्लोक का आशय यह खोलते हैं, कि विवाह में तो बीज को प्रधान माना जायगा। अब्राह्मणी से भी ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होगा। हाँ नियोग में स्त्री जाति को प्रधानता होगी। जैसा कि आगे चल कर भगवान् मनु स्पष्ट ही बीज की प्रधानता पर बल देते हैं —

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्ट मुच्यते ।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥३०॥
यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
तादृग् रोहति तत् तस्मिन् बीजं स्वैर्व्यञ्जितंगुणैः ॥
इयं भूमिर्हिभूतानां शाश्वती योनि रुच्यते ।

न च योनिगुणान् कांश्चिद् बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥
भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ।
नानारूपाणि जायन्ते वीजानीह स्वभावतः ॥३८
व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ।
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥३९॥
अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ।
उप्यते यद्धि यद् बीजं तत् तदेव प्ररोहति ॥४०॥

बीज और योनि में से बीज ही प्रधान माना गया है, क्योंकि सब जीवों की उत्पत्ति बीज के लक्षणों वाली होती है ॥३५॥ समय पर तय्यार किये खेत में जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही वह बीज अपने गुणों को प्रकट करता हुआ उस खेत में उगता है ॥ ३६ ॥ देखो यह भूमि (ओषधि वनस्पति आदि) जीवों की सदा से योनि चली आती है, पर इस में से उत्पन्न हुआ कोई भी बीज अपनी उत्पत्ति और वृद्धि में योनि के गुणों को प्रकट नहीं करता है ॥३७॥ देखो भूमि में भी एक ही क्यारी में भी किसानों से समय पर बोये बीज अपने २ स्वभाव से भांति २ के

आकारों वाले उत्पन्न होते हैं ॥ ३८ ॥ साठी, धान, मूंग, तिल, माष, जौ, लहसन और ईख सभी अपने २ बीज के अनुसार उगते हैं ॥ ३९ ॥ बोया तो और उगे कुछ और ऐसा कभी नहीं होता है । जो २ बीज बोया जाता है, वही २ उगता है ॥ ४० ॥

देखो मनुष्य के वीर्य की प्रधानता का प्रकरण चला कर इन दृष्टान्तों के द्वारा बलवती पुष्टी करने से भगवान् मनु का आशय स्पष्ट सिद्ध है, कि सन्तानोत्पादन में बीज की प्रधानता मानते हुए स्त्री रत्न को किसी भी जाति से लेलो । और–

आगे चल कर आर्यों और अनार्यों के अन्तर्विवाह में अपना अनुभव इस प्रकार प्रकट करते हैं—

जातो नार्या मनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ।
जातोप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥

(मनु० १० । ६७)

अनार्या स्त्री में से जो आर्य से उत्पन्न हुआ है, वह तो गुणों से आर्य होता है, पर आर्या स्त्री में से जो अनार्य से उत्पन्न हुआ है, वह अनार्य ही होता है, यह पक्का निश्चय है ।

आशय स्पष्ट है, कि हिन्दुओं को बाह्य जातियों से कन्या लेने में कोई हानि नहीं, प्रत्युत उन का भी भला है, क्योंकि वे स्वयं और उन की सन्तान परम्परा इस पवित्र हिन्दु धर्म के मार्ग पर अपनी जीवनयात्रा रक्खेंगे। हाँ देने में यह दोष है, कि उन सब का जीवन अनार्य हो जायगा। सो भगवान् मनु का यह अटल सिद्धान्त समझो कि—

श्रद्दधानः शुभां विद्या माददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

(मनु० २। २३८)

श्रद्धा युक्त हो कर शुभ विद्या शूद्र से भी ग्रहण कर लेवे, उत्तम मर्यादा अन्त्यजों से भी ग्रहण करे और स्त्री रूपी रत्न दुष्कुल से भी ले लेवे॥ यह है धर्म शास्त्र की आज्ञा। और भी सुनो, कन्याएँ तो पतितों की भी विवाह लेने में धर्मशास्त्रों की स्पष्ट आज्ञा है।

भगवान् **याज्ञवल्क्य** लिखते हैं—

कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिञ्चनाम्।

(याज्ञवल्क्यस्मृति, प्रायश्चित्त प्रकरण श्लोक २६१)

पतितों की कन्या को एक उपवास करा कर विवाह

लेवे, पर उनके घर की और कोई चीज़ न लेवे ।

इस पर **मिताक्षरा** में लिखा है, कि वह कन्या चाहे पतित अवस्था में ही उत्पन्न हुई हो तौ भी विवाह लेवे ।

इस से आगे मिताक्षरा में **वृद्ध हारीत** और **वसिष्ठ स्मृति** के प्रमाणों से इस को और भी स्पष्ट और पुष्ट किया है—

पतितस्य तु कुमारीं विवस्त्रा महोरात्रोपोषितां प्रातः शुक्लेनाहतेनवाससाऽऽछादितां नाहमेतेषां न ममैत इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत् ॥

पतित की कन्या जिस ने घर के वस्त्र उतार दिये हैं और एक दिन रात उपवास किया है, वह प्रातःकाल स्नान कर नये शुद्ध वस्त्र पहन कर तीन बार ऊंचे स्वर से कहे 'न मैं इन की हूं, न ये मेरे हैं' तब उसे तीर्थ पर वा अपने घर लाकर विवाह लेवे । (वृद्ध हारीत)

पतितेनोत्पन्नः पतितो भवत्यन्यत्र स्त्रियाः, सा हि परगामिनी तामरिक्था मुद्वहेत् ।

पतित से उत्पन्न हुआ पतित होता है, पर कन्या नहीं, क्योंकि वह परगामिनी (अपने भावी पति की अमानत) होती है. उस को कोई दहेज न लेकर विवाह लेवे ।

देखो जिन के घर की किसी भी वस्तु के ग्रहण करने का निषेध है, कन्या उन की भी एक उपवास करा कर विवाह लेने की आज्ञा है ।

यह हैं धर्मशास्त्रों के आदेश । इन को सुन कर आप जान गये होंगे, कि हिन्दुधर्म को सारी दुनिया में फैलाने का जो अभिप्राय वेद का है, वही अभिप्राय धर्मशास्त्रों का है। आज हम यहीं समाप्त करते हैं। कल इसी विषय पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार आरम्भ करेंगे ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

शुद्धि और प्रचार पर ऐतिहासिक दृष्टि ।

श्रीगुरु०—श्रोतृवृन्द ! आज हम हिन्दुधर्म के प्रसार और ह्रास का इतिहास आप के सम्मुख रखना चाहते हैं । प्रोफैसर वाचस्पति ने हिन्दुजाति के इतिहास से हिन्दुधर्म और हिन्दुजाति का जो ह्रास दिखलाया था, उसे सुन कर आप सब के नेत्रों में आँसू भर आये थे । इस लिये मैं कहना

चाहता हूं, कि अब अपने हृदयों को लोहे जैसा कड़ा बना कर मेरी बात को सुनो । इस लंबी नींद में हम क्या से क्या हो गये हैं, इस का क्या ठिकाना है । हाँ यह हर्ष की बात भी है, कि इतिहास को सुन कर आप को अपनी वृद्धि और ह्रास के कारणों का यथार्थज्ञान प्राप्त होगा, इसी में हमारा भावी कल्याण निहित है । सो सावधान हो कर सुनो—

महाभारत के जानने वालों से यह बात छिपी नहीं, कि महाभारत के समय अफगानस्थान, बिलोचस्थान, काबुल, कन्धार और ईरान आदि निरे हिन्दु प्रदेश थे । गान्धार का राजा सुबल क्षत्रिय था, उस की पुत्री गान्धारी राजा धृतराष्ट्र से ब्याही थी । उस समय क्षत्रियों की दो बड़ी प्रबल जातियाँ थीं, भरतवंशी और नागवंशी । भरतवंशी हिन्दुस्थान के राजा थे, और नागवंशी रावलपिंडी से परे काबुल तक सारे पहाड़ी प्रदेशों के राजा थे । नागों को तक्ष भी कहते थे । सो जिस प्रकार इधर भरतों के नाम पर इस देश का नाम भारतखण्ड था, इसी प्रकार उधर तक्षों के नाम पर उस देश का नाम तक्षखण्ड था और उस की राजधानी का नाम भी तक्षखण्ड था, जो अब ताशकन्द

नाम से प्रसिद्ध है। तक्षों के प्रदेश की सीमा रावलपिण्डी के पास तक्षशिला (तक्षों की सीमा थी)। दोनों ही क्षत्रिय जातियाँ आर्य थीं, आपस में इन के विवाह सम्बन्ध होते थे। कुन्ति के पिता यदुवंशी राजा शूर के नानके नाग थे। कारणवश जब नागों और भरतों में वैर उत्पन्न हुआ, तब अवसर पाकर तक्ष ने राजा परीक्षत् का वध किया। परीक्षत् का पुत्र जनमेजय जब बड़ा हुआ, तो उस ने अपने पिता का बदला चुकाने के लिए तक्षशिला पर चढ़ाई की। जैसा कि महाभारत में आया है—

तक्षशिलां प्रत्यभितस्थे। तं च देशं वशे स्थापयामास

(महाभारत आदि पर्व ३ । २०)

तब जनमेजय ने तक्षशिला पर चढ़ाई की और उस देश को अपने वश में कर लिया।

तक्षशिला को जीत कर जनमेजय नागों का विध्वंस (=सर्पसत्र) करता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा था, जब एक धुरन्धर विद्वान् ब्राह्मण कुमार **आस्तीक** ने बीच में पड़ कर सुलाह करा कर सारा वैर मिटा दिया। यह आस्तीक ब्राह्मण भी नागों का दोहता था, और भारतवासी यायावर ब्राह्मण जरत्कारु का पुत्र था। इत्यादि प्रमाणों से निश्चित

है, कि उत्तर पश्चिम का पहाड़ी प्रदेश एक समय सारा हिन्दु प्रदेश था। अष्टाध्यायी जो संस्कृत और वैदिक दोनों भाषाओं का पूर्ण व्याकरण है, इस का रचने वाला **पाणिनि** मुनि इसी पहाड़ी प्रदेश के **शालातुर** ग्राम में जन्मा था। और तुलनात्मक भाषा विज्ञान ने तो इस बात को अब स्पष्ट सिद्ध कर दिया है, कि हिन्दुस्थान के आर्य, अफगानस्थान और ईरान आदि के वर्तमान मुसल्मान तथा मध्यएशिया और योरुप की जातियाँ इन सब के पूर्व पुरुष एक ही थे। एक ही आर्य जाति का यह सब विस्तार हैं। अर्थात ग्रीक (यूनानी), इटैलियन, ट्यूटन्स, कैल्टस, अंगरेज़ जर्मन, स्लेव्ज़, अलबानिया वाले, ईरानी और भारतीय आर्य, सब एक ही महती जाति की बिछड़ी हुई भिन्न २ शाखाएँ हैं। सो इतना मान लेने में तो अब किसी को विवाद ही नहीं रहा। पर हमारा इतिहास इस से भी आगे बढ़ता है। यद्यपि उस पर पुराविदों ने अभी कोई प्रकाश नहीं डाला, तथापि हिन्दुवृद्धों के विश्वास की दृष्टि से उसे भी आप के सम्मुख रखना आवश्यक है।

आप को स्मरण है, कि वेद के प्रमाण से हम सिद्ध कर चुके हैं, और इञ्जील और कुरान से उस की पुष्टि

दिखला चुके हैं, कि आरम्भ में सारी दुनिया का एक ही धर्म था और वह धर्म वैदिक धर्म था। सो इस विषय में पहले आप को हिन्दु इतिहास सुना कर फिर नये अनुसन्धान आप के सम्मुख रक्खेंगे।

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ९३ में आया है—

मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पुत्रास्तु तत्समाः ।
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥
ससमुद्रा करवती प्रतिवर्षं निवेशिता ॥

स्वायम्भुव मनु के दस पुत्र हुए, जो (प्रजा पालन में) मनु के तुल्य थे, जिन्हों ने कि पर्वतों और समुद्रों समेत सातों द्वीपों वाली सारी पृथिवी को अपना करद (टैक्स देने वाली) बनाया ॥ संस्कृत में प्रजा पुत्र को कहते हैं। रऐयत (Subjects) भी राजा के पुत्र होते हैं, इस कारण संस्कृत में रऐयत को राजा की प्रजा कहते हैं। राजा का धर्म है, कि अपनी प्रजा की ओर पितृधर्म का पालन करे।

मनु और मनु के पुत्रों ने इसी प्रकार अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन किया, और प्रजाओं ने भी उन्हें अपना पिता समझा, इस कारण से मनु के नाम पर मनुष्यमात्र का नाम मानव

वा मनुष्य हुआ । क्योंकि आदि पुरुष के नाम पर प्रायः वंशनाम प्रसिद्ध होते हैं । और इस लिए मनु भी मनुष्य का नाम है । मनु ही इंग्लिश में Man (मैन) है, जो मनुष्य-मात्र का वाचक है । सो मनुष्य का गोत्र नाम हिन्दुओं की दृष्टि में मनु वा मानव है, जैसा कि आश्वलायन श्रौत सूत्र १३ । ५ में लिखा है—**सर्वेषां मानवेति संशये** संशय में सब मनुष्यों का गोत्र मानव कहे । इसी प्रकार योरुप की जातियां सब मनुष्यों का गोत्र नाम man बतलाती हैं । इन दोनों का मेल पुराण के उक्त वचन पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है । और ये सारी बातें वेद के उस प्रमाण की पुष्टि करती हैं, कि आदि में वेद का संदेश मनुष्यमात्र तक पहुंचा दिया गया था । सर्वथा यह तो निर्विवाद है, कि आर्यधर्म दूर २ के देशों तक फैला हुआ था ।

इस फैलाव का कारण क्या था ? एक तो धर्म प्रचार में ब्राह्मणों का उत्साह और दूसरा धर्म के द्वार का मनुष्यमात्र के लिए खुला होना ।

उस समय के ब्राह्मणों को हम उत्साह के साथ देश देशान्तरों में धर्म का प्रचार करते हुए पाते हैं । ब्राह्मणों में एक सम्प्रदाय **यायावर** नाम से प्रसिद्ध था। यायावर

का अर्थ है खुला फिरने वाले, जिन्हों ने कोई अपना घर नियत नहीं किया। ये लोग गृहस्थ होते थे, तौ भी अपने घर कहीं नहीं बनाते थे। अभिप्राय यह था, कि जितना अधिक से अधिक वे धर्म का प्रचार कर सकते हैं, उतना पूरा करें। यह तभी हो सकता था, कि वह न एक जगह घर बनाएँ, न उस में उन की ममता हो, न उन्हें घर खींच २ कर वापिस लाएँ। जिधर चाहें, चल पड़ें और यदि आगे २ प्रचार का क्षेत्र मिलता जाय, तो आगे ही आगे बढ़ते जायँ, पीछे खींचने वाली कोई बात न हो। खाने को वनों में वनों के फल फूल और ग्रामों में भिक्षा। करने को वनों में तपश्चर्या और ग्रामों में धर्मप्रचार। इस सम्प्रदाय का पता जनमेजय के समय तक बराबर चलता है। जनमेजय के सर्पसत्र को रोक कर नागों और भरतों में जिस ने सन्धि करा दी थी, वह **आस्तीक** भी एक यायावर ब्राह्मण कुमार था। इन की धर्मचर्या का प्रभाव जितना लोगों पर पड़ता था, वह इसी से सिद्ध है, कि इस वंश का एक कुमार दो राज्यों की इतनी बड़ी उलझन को सुलझा सका। उस के एक वचन से दोनों राज्यों के वैर मिट कर दोनों में सन्धि हो गई। भला जब ऐसे तपस्वी ब्राह्मण धर्म प्रचार

में कटिबद्ध हों, और द्वार सब के लिए खुला हो, तो फिर क्यों न हिन्दु धर्म सारी दुनिया पर फैले ।

वाल्मीकि-रामायण में हमें यायावरों की तरह के ही प्रचारक एक और ब्राह्मण सम्प्रदाय का वर्णन मिलता है। दशरथ के मरने पर भरत को लाने के लिए जो दूत भेजे गये थे, उन के मार्ग के वर्णन में आया है—

अवेक्ष्याञ्जलिपानांश्च ब्राह्मणान् वेदपारगान् ।
ययुर्मध्येन वाहीकान् सुदामानं च पर्वतम् ॥

(रामा० अयोध्या० ६८ । १८)

वेद के पार पहुँचे हुए अञ्जलिपान ब्राह्मणों को देखते हुए वह दूर वाहीक देश और सुदामा पर्वत के मध्य से गये।

अञ्जलिपान=अञ्जलि से पीने वाले जो प्यास लगने पर अञ्जलि (बुक्क) से पानी पी लेते थे, कोई पात्र पास नहीं रखते थे । अर्थ से तो इतने बेपरवाह कि पात्र भी पास नहीं और विद्या में इतने निष्णात कि वेद के पार पहुँचे हुए। जब इस प्रकार के निःस्पृह ब्राह्मण धर्म के प्रचार में दत्तचित्त रहते थे, तभी तो वैदिक धर्म का झंडा दुनिया में फहरा रहा था ।

विन्ध्याचल की ऊंची चोटियों को पार करके दक्षिण

में जाना जिस समय असम्भव प्रतीत होता था, उस समय दक्षिण में धर्म प्रचार के लिए इन उत्साही ब्राह्मणों ने ही सब से पहले विन्ध्याचल की ऊँची चोटियों को पार करने का साहस दिखलाया था। अगस्त्य ऋषि और उसके साथी सब से पहले धर्मप्रचार के लिए विन्ध्याचल से पार हुए। दक्षिणीजातियों में हिन्दुसभ्यता और हिन्दुधर्म के प्रचारक भगवान् अगस्त्य थे। उन के विन्ध्याचल पार करने की कथा अलंकार के रूप में पुराणों में अब तक सुरक्षित है। और दक्षिण में यह बात ऐतिह्य के रूप में परम्परा से मानते चले आते हैं, कि तामिल भाषा के प्रवर्तक अगस्त्य ऋषि थे। स्मरण रहे कि तामिल भाषा ही दक्षिण की सब से पुरानी भाषा है। ऐसा अनुमान करने के हेतु हैं, कि अगस्त्य ऋषि ने वहाँ की लोक भाषा में धर्म का प्रचार किया। महात्मा बुद्ध का धर्म इस लिए बहुत जल्दी फैला था, कि उस ने लोकभाषा में अपने धर्म का प्रचार किया। पर बुद्ध से बहुत पहले अगस्त्य ने भी हिन्दु धर्म का प्रचार दक्षिण की लोकभाषा में किया था। हाँ यह निःसंदेह है, कि उसके प्रभाव से संस्कृत का प्रभाव उस भाषा पर इतना अधिक पड़ा कि उस भाषा ने एक मार्जित नया रूप धारण किया। इसी से अगस्त्य को उस भाषा (तामिल) का प्रवर्तक कहते हैं।

अगस्त्य ऋषि से ही सम्बन्ध रखने वाली एक और कथा ब्राह्मणों के उस साहस का पता देती है, जो उन्हों ने नरभोजी राक्षसों में भी पहुँच कर प्रचार किया। कथा का सारांश यह है, कि अगस्त्य और उन के साथी प्रचार के लिए दक्षिण के उन वनों में भी पहुँचे, जहाँ नरभोजी राक्षस रहते थे। अपने प्राणों को संदेह में डाल कर भी ब्राह्मण उन में धर्मप्रचार करने लगे। वहाँ वातापि और इल्वल नाम के दो सगे भाई राक्षस रहते थे। वे ऐसे धूर्त थे, कि प्रकाशतः ब्राह्मणों में भक्ति प्रकट करते थे और अन्दर से उन के शत्रु थे। ब्राह्मणों की भाषा (संस्कृत) में वार्तालाप कर सकते थे। वे किसी अकेले दुकेले ब्राह्मण को एकान्त में जा मिलते, और उसे आतिथ्यसत्कार के लिए अपने घर ले जाते*। उनकी श्रद्धा भक्ति और संस्कृत-भाषण को देख कर प्रचारक ब्राह्मण उन को धर्माभिलाषी जान उन के साथ उन के घर जाता। तब वे धूर्त उसे

---

* इहैकदा किलक्रूरो वातापिरपिचेल्वलः ।
भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ॥५५॥
धारयन् ब्राह्मणंरूप मिल्वलः संस्कृतं वदन् ।
आमन्त्रयति विप्रान् स श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः ॥५६॥
(वा० रा० अरण्य०)

आदर सत्कार के साथ बिठा अवसर पा प्राणों से मार डालते । इस प्रकार उन्हों ने कई हत्याएँ कर डालीं । अब उन्हों ने अगस्त्य पर भी हाथ साफ करना चाहा। अगस्त्य को निमन्त्रण देकर जब घर ले गए, तो देवताओं की कृपा से अगस्त्य उन की धूर्तता को भाँप गया और वह सावधान रहा। जब उन्हों ने उस पर आक्रमण किया, तो उस ने उन दोनों को मार डाला, और तब यह हत्याकाण्ड समाप्त हुआ। देखिये ऐसे २ संकटों में पड़ कर इन उत्साही ब्राह्मणों ने आर्यसभ्यता का राक्षसों तक में प्रचार किया है। इन ब्राह्मणों में तपश्चर्या का जीवन, विद्या से प्रेम, धर्म में निष्ठा, धर्म प्रचार की लग्न और असभ्यों के सभ्य बनाने में अदम्य उत्साह इत्यादि उदारगुण ही इन की विशेषताएँ थीं, जिन से ये धर्म का प्रचार सब के अन्दर कर सकते थे। और ये ही विशेषताएँ थीं, जिन्हों ने इन को जगत्पूज्य बना दिया था ।

इस प्रकार पुराकल्प में हिन्दुधर्म के द्वार सब के लिए खुले थे, और प्रचारक ब्राह्मण सर्वत्र घूम २ कर हिन्दुधर्म का हिन्दु अहिन्दु सब में प्रचार करते थे । अनार्य जातियों में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए आर्य ब्राह्मण पहले पहुँचते थे, क्षत्रिय और वैश्य पीछे, पर पहुंचते वे भी थे । जब

तक काम इस उत्साह के साथ होता रहा । हिन्दुधर्म की चढ़ती कला दिन पर दिन सवाई होती चली गई। ऐश्वर्य इतना बढ़ा, कि कुछ ठिकाना न रहा । इस ऐश्वर्यवृद्धि के साथ सारी ही आर्यजाति में आलस्य और अकर्मण्यता बढ़ने लगी। जाति के किसी भी अंग का आलस्य सारी ही जाति के लिए हानिकारक है, पर जितना ब्राह्मणों का आलस्य हानिकारक है, इतना हानिकारक और किसी का आलस्य नहीं, क्योंकि ब्राह्मण जाति का सिर होते हैं, अतएव भगवान् मनु ने ब्राह्मणों को घोषणा दी । ब्राह्मणो ! उन शत्रुओं से सावधान रहना, जिन की ज़द में आये हुए तुम मारे जाओगे । सुनो—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥२॥

(मनु० ५)

वेदों के अनभ्यास, आचार के त्याग, आलस्य और अन्न के दोष से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहता है ।

जो लोग इसके तात्पर्य को न समझ अक्षरों के फेर में पड़े रहते हैं, वे यह कहा करते हैं, कि यह तो मनु का कहना सत्य नहीं

प्रतीत होता, क्योंकि ये चारों ही दोष अब ब्राह्मणों में पूरे ज़ोर के साथ आगये हैं, फिर भी मरे तो नहीं ? उन भोले लोगों को हम क्या कहें, अरे जब ब्राह्मणत्व ही न रहा, तो ब्राह्मण क्या जीते रहे ? कहाँ वह ब्राह्मणत्व, कि जब एक ब्राह्मण कुमार आस्तीक महाराज जनमेजय की भरी सभा में पहुँचता है, तो उस के मान में सब के सब उठ खड़े होते हैं। उसने किसी को कहा नहीं, 'मैं ब्राह्मण हूं' किन्तु उस के चेहरे पर वह ब्रह्मवर्चस चमक रहा है, जिसे देख कर हो नहीं सकता था, कि कोई बैठा रह जाय, उसके मान के लिए न उठे। और कहाँ अब यह दशा कि अपने मुँह से ब्राह्मण कह कर भी अपमान ही पाते हैं। एक बार बाजार से गुजरते हुए मैंने देखा कि दो नवयुवक झगड़ रहे थे, एक ने भरे क्रोध में दूसरे से कहा 'निकालूं तेरा ब्राह्मणपन' मुझ से रहा न गया। मैंने कहा 'अरे ब्राह्मणपन तो निकल चुका, अब क्या निकालोगे ! जिस को तुम निकालना चाहते हो वह इस में है नहीं, होता तो तुम इसके पाओं पर गिरे होते, न कि मुकाबिले में खड़े होते।' अस्तु प्रकृत यह है, कि जब ब्राह्मणों में आलस्य आगया, और धर्म प्रचार का काम ढीला पड़ा, तो उसका जो फल हुआ उसे अपने

शास्त्रों के वचनों में ही सुन लीलिये—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥४३॥
पौण्ड्रकाश्चौड्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ४४
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृतः ॥४५

(मनु० १०।४३–४५)

(कर्म कराने वाले) ब्राह्मणों के न मिलने से, अतएव (उपनयन आदि) संस्कारों के लोप होजाने से क्षत्रियों की ये जातियाँ धीरे २ वृषल (धर्म हीन) हो गईं ॥४३॥ पौण्ड्रक, ओड्र (मध्य उडीसा की हीन जातियाँ और पञ्जाब के ओड) द्रविड, काम्बोज, यवन (ग्रीक) शक (सीथियन) पारद, पल्हव (पारसी) चीन (चीनवासी) किरात, दरद (दरदस्थान के लोग) और खश ॥४४॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की जो जातियाँ (धर्म से) बाहर हो गई हैं, वे चाहे म्लेच्छ भाषाएँ बोलती हैं, चाहे आर्य भाषाएँ, सब दस्यु मानी गई हैं ॥४५॥ हा शोक! आर्य जाति का कितना यह

भुजबल हमारे प्रमाद में हम से कट कर अलग हो गया। ईरानी, यूनानी आदि जो कि आर्य क्षत्रिय थे ब्राह्मणों के आलस्य से संस्कारहीन हुए। संस्कारहीन हो कर भी ये लोग शूद्र नहीं, किन्तु वृषल (संस्कार हीन) पतित क्षत्रिय ही थे, जो प्रायश्चित्त द्वारा फिर क्षत्रियोचित संस्कारों के योग्य बन सकते थे। इन का क्षत्रिय होना बहुत पीछे तक प्रसिद्ध रहा है। जैसा कि—**जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** (४।१।१६८) इस सूत्र में पाणिनिमुनि ने उन क्षत्रियों का वर्णन किया है, जिन के अधीन उस २ जाति के नाम पर देश भी हैं। इसी प्रकरण में आगे सूत्र आया है— **कम्बोजाल्लुक्** (४।१।१७५) इस से सिद्ध है, कि कम्बोज पाणिनि के समय तक क्षत्रिय समझे जाते थे, और वह अपने देश कम्बोज के मालिक थे। इस सूत्र पर वार्तिक है '**कम्बोजादिभ्योलुग्वचनं चोडाद्यर्थम्**' इस के उदाहरण—**चोल, शक, केरल, यवन** दिये गये हैं। इस से स्पष्ट है, कि वार्तिककार के समय तक यवनों और शकों का क्षत्रिय होना यहाँ के विद्वान् भूल नहीं गये थे। यह बड़ा स्पष्ट प्रमाण है इस बात का, कि ये सब जातियाँ अपने पूर्वरूप में क्षत्रिय जातियाँ थीं। इस प्रकार

के स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए हम किस प्रकार अपने मन को यह संतोष दें, कि हिन्दुस्थान के हिन्दु जो मुसल्मान और ईसाई हो गये हैं, हमारी जाति को, बस इतना ही घाटा पड़ा है, इससे अधिक कुछ नहीं। यद्यपि यह घाटा भी थोड़ा नहीं है, पर वास्तव दृष्टि में तो जो ह्रास हमारी जाति का प्रमाद की इस लंबी निद्रा में हुआ है, वह बड़ा ही दुःखदायी है। और शोक यह है, कि हमारी जाति अब भी अपनी प्रमाद की नींद को नहीं छोड़ती। हाँ इन भद्र पुरुषों को हमारा नमस्कार है, जिन की आँखें अब खुल गई हैं, और जो हिन्दु-धर्म के द्वार को सब के लिए खोल रहे हैं। यह हमारे धर्म के फैलाव और ह्रास का संक्षिप्त इतिहास है । कल इसी विषय का ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा सविस्तर वर्णन करेंगे।

पञ्चमोऽध्यायः ।

(शुद्धि वा धर्म प्रचार में ऐतिहासिक प्रमाण)

श्री गुरु०—सज्जनो! ऐतिहासिक दृष्टि से यह शोचनीय दृश्य तो हमारी आँखों के सामने आगया, कि हम कितने बड़े थे और कितने छोटे हो गए, कितते फैले हुए थे और कितने संकुचित हो गये। आओ अब इतिहास के

दूसरे अंग पर दृष्टि डालें, कि ब्राह्मणों के न मिलने से आर्यावर्त के बाहर तो जहाँ हिन्दु क्षत्रिय भी वृषल हो गये, वहाँ अहिन्दुओं में धर्म प्रचार की तो क्या कथा, तौ भी यहाँ हिन्दुत्व के केन्द्र में जहाँ ब्राह्मण सदा विद्यमान रहे और वर्ण आश्रम की व्यवस्था भी बनी रही, वहाँ दूसरों के लिए धर्म का द्वार खुला रहा वा नहीं? सुनो। क्रमवार ऐतिहासिक घटनाएँ दिखलाने से पूर्व मैं आप को यह बतला देना चाहता हूं, कि यह बड़े हर्ष की बात है, कि इस आलस्य और प्रमाद में भी यहाँ धर्म का द्वार सब के लिए खुला रहा है और शुद्धि बराबर होती रही है। ऐसा न होता रहता, तो यहाँ भी हिन्दुत्व का बल टूट जाता और न जाने हमारी क्या दशा हो जाती। पर सौभाग्य की बात है, कि यहाँ शुद्धि और प्रवेश बराबर होते रहे हैं, जब तक कि बल पूर्वक नहीं रोक दिये गये। यदि बलात न रोक दिये जाते, तो निःसंदेह आज कुछ दृश्य और ही होता। जब शुद्धि और प्रवेश बलपूर्वक रोक दिये गये, तब हिन्दुओं को अपने बचाव के ही उपाय ढूंढने पड़े, जिस के लिए अब उन्हों ने एक नया ही मार्ग निकाला, जिस पर चलने से हमारा बहुत बड़ा बचाव हुआ है। निःसंदेह वह मार्ग उस

आपत्काल के लिए श्लाघनीय था, पर अब वह आपत्काल दूर हट गया है, इस लिए हमें अब पूर्ववत् शुद्धि के द्वार फिर खोल देने चाहिये। इस सारांश को हृदय में रख कर क्रमशः अपने इतिहास के प्रमाण सुनो—

पहले इस बात का जान लेना आवश्यक है, कि हिन्दु-मर्यादा के अनुसार सारे मनुष्य चार ही वर्णों में विभक्त हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यद्यपि यह वर्ण-व्यवस्था प्रचलित तो हिन्दुओं में ही है, पर हिन्दुमर्यादा के अनुसार मनुष्य सारी दुनिया के ही इन चार वर्णों में आ जाते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्यों में नहीं आते, वे सब शूद्रों में गिने जायँगे।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थएकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः॥
(मनु० १०। ४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण द्विज (=द्विजन्मा) हैं, चौथा शूद्र एकजन्मा है, पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं है।

इस के अनुसार जो द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) से भिन्न हैं, वे सब शूद्र हैं। इस से हिन्दुशूद्र और अहिन्दु

सभी शूद्रों में आजाते हैं। और देखो-**पाणिनि** मुनि का एक सूत्र है-**शूद्राणामनिरवसितानाम्** (२।४।१०) इस में दो प्रकार के शूद्र माने हैं-बहिष्कृत और स्वीकृत। बहिष्कृत=निकाले हुए, वे हैं जिन को अपने पात्रों में खिलाना वर्जित है, दूसरे सब स्वीकृत हैं। इस पर पतञ्जलि महामुनि **किष्किन्ध, गन्धक, शक, यवन, शौर्य, क्रौञ्च** इत्यादि बाहर की जातियों को, और **तरखान, लुहार, धोबी, जुलाहे** इत्यादि आर्यावर्तीय जातियों को, तो स्वीकृत शूद्रों में गिनते हैं, और **चण्डाल** और **मृतपों** को बहिष्कृत शूद्रों में। इस से स्पष्ट है, कि जो द्विजधर्म अर्थात् वेदों के अध्ययन और वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान से रहित हैं, हिन्दु दृष्टि में वे सब शूद्र हैं, उन में से भी बहिष्कृत वही हैं जिन के कर्म घृणित हैं दूसरे सारे स्वीकृत हैं। जैसा कि बहिष्कृतों में चण्डाल तो प्रसिद्ध ही हैं। स्मृतियों में लिखा है, कि चण्डाल ग्राम से बाहर रहें, सवेरे आकर ग्राम में झाड़ू दें और मल उठा लेजायँ। यही काम वह अब कर रहे हैं। यह कर्म घृणित है, इसी लिए इन को पात्र से अलग किया। दूसरे हैं **मृतप**। यह कौन हैं? इस पर

कैय्यट लिखता है-**मृतपाः**=डोम्बाः । मृतप=डोम्ब प्रसिद्ध डोम, डूम, डोमने वा डूमने हैं । कैय्यट के लिखे **'मृतपा डोम्बाः'** पर नागेश लिखता है-'मृतप डोम्ब हैं, जो कि श्मशान के निकट रहते हैं, मरों के वस्त्र और चिता की लकड़ी आदि को बर्तते हैं । ये भी चण्डालों के तुल्य होते हैं' यह काम भी घृणित है, इसी लिए इन को पात्र से अलग किया । ये लोग अब इस घृणित काम को छोड़ चुके हैं । डूम मीरासियों को भी कहते हैं । यह कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं में से कुछ लोग गाने बजाने के काम में लग गए हों, और फिर मुसल्मान बन कर हिन्दुओं के लिए स्पृश्य हो गये हों। क्योंकि यह तो निःसन्देह ही है, कि मुसल्मान वे हिन्दुओं से ही हुए हैं, मुसल्मानों में तो गाने बजाने का व्यवसाय ही धर्म विरुद्ध है। और यह लोग हिन्दुओं को ही अपना यजमान बनाये हुए हैं। अस्तु प्रकृत यह है, कि इधर तो जब चाण्डाल तक को शूद्रों में गिना और उधर बाहर की जातियों को भी शूद्र ही कहा, तो स्पष्ट है, कि हिन्दु-मर्यादा के अनुसार तीन वर्णों से भिन्न शेष सब लोग शूद्र हैं । यही बात **नागेश** ने इस सूत्र पर स्पष्ट शब्दों में लिखदी है-**'शूद्रशब्दोऽत्र सूत्रे त्रैवर्णिकेतरपरः'**=

शूद्र शब्द इस सूत्र में त्रैवर्णिकों से भिन्न जो कोई भी जाति है उस सब का बोधक है । यह हिन्दुशास्त्रों का निश्चित सिद्धान्त है। सो हमारे शास्त्रों की दृष्टि से दुनियाँ के मनुष्य हिन्दु मुसल्मान आदि जातियों में विभक्त नहीं, विभक्त हैं चार वर्णों में, क्योंकि उन की दृष्टि में सभी जातियों के लोग हिन्दुधर्म से पतित हुए हैं, मूल में हिन्दु ही थे, अतएव अब भी वे चतुर्थ वर्ण के ही अन्तर्गत हैं। हिन्दुमर्यादाओं को भूल कर वह हम से बिछड़े हैं, उन में हिन्दुमर्यादाओं का प्रवेश कराना बिछड़े हुओं को फिर मिलाना है। इस बात को पूरे ध्यान में रक्खो और सावधान हो कर अब अपने पूर्व इतिहास को सुनो। उस में भी पहले ऋषियों के युग की बातें सुनो—

माध्यमाः सरस्वत्यां सत्रमासत तद्धापि कवषो मध्ये निषसाद । तं हेम उपोदुर्दास्या वै त्वं पुत्रोऽसि न वयं त्वया सह भक्षयिष्याम इति । स ह क्रुद्धः प्रद्रवन्त्सरस्वतीमेतेन सूक्तेन तुष्टाव । तं हेयमन्वेयाय । तत उ हेमं निरागा इव मेनिरे । तं हान्वावृत्योचुः "ऋषे नमस्तेऽस्तु मा नो हिंसीस्त्वं वै नः श्रेष्ठोऽसि यं त्वेय मन्वेतीति" तं ह

ज्ञपयाञ्चक्रुस्तस्य ह क्रोधं विनिन्युः स एष कवष-स्यैष महिमा, सूक्तस्य चानुवेदिता ।

(कौषीतकि ब्राह्मण १२ । ३)

माध्यम ऋषि सरस्वती के तट पर सत्र (एक लंबे यज्ञ) का अनुष्ठान करने लगे । वहाँ उन के मध्य में कवष भी बैठा । उन्हों ने उसे निकाल दिया, कि 'तू दासी का पुत्र है, हम तेरे साथ नहीं खाएँगे। वह क्रुद्ध हो कर चला गया और इस सूक्त (ऋग्० १० । ३०) से उस ने सरस्वती की स्तुति की । यह (सरस्वती) उस के चारों ओर बहने लगी । तब उन्हों ने समझा, कि यह तो निष्पाप है । वे उस के पास गये और बोले । 'ऋषे ! नमस्तेऽस्तु । मत हमें मारो तुम हमारे मध्य में श्रेष्ठ हो, जिन के समन्तात् यह (सरस्वती) घूम रही है" । उस से विनति की और उस का क्रोध मिटाया। यह है **कवष** की महिमा, जो इस सूक्त (ऋग्० १० । ३०) का ऋषि है ।

देखो यहाँ स्पष्ट इस बात का निर्देश है, कि जिस को ऋषियों ने दासी (शूद्र वर्ण की स्त्री) का पुत्र होने के कारण अपनी पंक्ति से अलग कर दिया था, जब उस में उन्हों ने ऋषियों वाला आत्मबल देखा, तो उसे अपना-

लिया, क्षमा मांगी और उसे भी अपने जैसा ऋषि मान लिया । ऋग्वेद मण्डल् १० सूक्त ३० से ३४ तक पाँच सूक्तों का यह ऋषि है । इस ऋषि की यही कथा इससे भी विस्तृत रूप में ऐतरेय ब्राह्मण २ । ३ । १ में आई है और छागलेयोपनिषद् में बहुत विस्तार के साथ वर्णन की है ।

अब दूसरी कथा सुनो । ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १२५ की भूमिका में श्री सायणाचार्य कक्षीवान् ऋषि की कथा इस प्रकार लिखते हैं—

दैर्घतमसः कक्षीवान्नामऋषिः ब्रह्मचर्यं चरिष्यन् वेदाभ्यासाय गुरुकुले चिरकालमुषित्वा-वेदान्सम्यगधीत्यव्रतानि च चरित्वा तेनानुज्ञातः पुनः स्वगृहं प्रतिप्रयास्यन् मध्येमार्गे रात्रौ विश्रान्तः । प्रभाते भावयव्यस्य पुत्रः स्वनयो नाम राजा अनुचरैः सह क्रीडमानोऽकस्मात् कक्षीवतोऽन्तिकमाससाद । स च रभसा प्रतिबुद्धः सहसोत्तस्थौ । तं च राजा पाणिं गृहीत्वा स्वकीयमासनमुपवेश्यास्य सौन्दर्यमवगत्य स्वकन्या-

प्रदानमनाः पप्रच्छ । भगवन् कस्य पुत्रः किं-
नामा त्वमिति । स च पृष्टो मातरं पितरं स्ववृ-
त्तान्त ञ्चाचचक्ष, स च राजा संभाव्य इत्यवगत्य
मुदितमनाः स्वगृहं प्राप्यास्मै मधुपर्कमारचय्य
वस्त्रमाल्यादिभिः पूजयित्वा सरथा दश कन्याः
शतं निष्कानश्व शतं पुंगवानां शतं गवां षष्ट्युत्तर-
सहस्रं पुनरेकादश रथाँश्चप्रादात्। स च सर्व मनु-
क्रमेण प्रतिगृह्य दीर्घतमसोऽन्तिकमागत्य तस्मै
प्रादर्शयत् ।

ननु कक्ष्या नामाश्वबन्धनीरज्जुस्तद्वान् कक्षी-
वान्, अश्वबन्धनं च राज्ञ एवोचितम्, अतोऽस्य
राजन्यत्वात् प्रतिग्रहो नोपपद्यते 'याजनाध्यापने
चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः' इति स्मरणात्। तस्माद्
ब्राह्मणस्यैवाधिकारो नतु क्षत्रियस्येति। नैषदोषः।
यद्यप्यसौ कलिङ्गाख्यस्य राज्ञः पुत्रः तथापि तेन
कलिङ्गेन स्वयं वृद्धत्वाद पत्योत्पादनाय सामर्थ्य-

मलभमानेनतदुत्पादनाय याचितो दीर्घतमाऋषिः उशिङ्नामिकामपत्योत्पादनाय प्रेषितया राजमहिष्याऽतिजरठेन महर्षिणा सह रन्तुं लज्जमानया स्ववस्त्राभरणैरलंकृत्य स्वप्रतिनिधित्वेनप्रेषिता मुशङ्नामिकां योषितं दासीमित्यवगत्य मन्त्रपूतेन जलेनाभिषिच्य ऋषिपुत्रीं कृत्वा तया सह रेमे। तदुत्पन्नः कक्षीवान्नामऋषिः । एतत्सर्वमस्माभिः पूर्वाध्याये नासत्याभ्यामित्यत्र विस्तरेण प्रतिपादितम् । अतोऽस्य क्षत्रियसम्बन्धात् कक्षीवानिति नामोपपन्नं दीर्घतमसः परमर्षेरुत्पन्नत्वेन ब्राह्मणत्वात् प्रतिग्रहोप्युपपन्न एव ।

दीर्घतमा का पुत्र कक्षीवान् नाम ऋषि ब्रह्मचर्य धारण कर वेदाभ्यास के लिए गुरुकुल में चिरकाल वास करके वेदों को भली भाँति पढ़ कर और व्रतों को पूरा कर गुरु से अनुज्ञा लेकर फिर अपने घर को लौटता हुआ मार्ग में एक रात ठहरा । वहाँ दूसरे दिन सवेरे ही भावयव्य का पुत्र स्वनय नाम राजा अपने साथियों समेत सैर करता

हुआ अकस्मात् कक्षीवान् के पास आ निकला । कक्षीवान् भी जागते ही उसे देख झट उठ खड़ा हुआ । राजा ने हाथ से पकड़ कर उसे अपने आसन पर बैठा लिया और उस के सौन्दर्य को देख स्वकन्यादान के विचार से पूछा । भगवन् आप किस के पुत्र हैं और क्या नाम है ? तब उस ने अपने माता पिता का नाम और अपना वृत्तान्त कह सुनाया । राजा ने उसे पूजनीय जान प्रसन्नमन हो अपने घर आ मधुपर्क तय्यार कर वस्त्र माला आदि से पूज कर रथों समेत दश कन्याएँ सौ निष्क (सोने के सिक्के) सौ घोड़ा सौ सांड और १७६० गौएं और ११ और रथ दिये । उस ने क्रम से यह सारा दान लेकर दीर्घतमा के पास आ दिखलाया । (इतनी कथा लिख कर श्रीसायणाचार्य स्वयं इस पर प्रश्न उठाते हैं) ।

प्रश्न—कक्ष्या नाम घोड़े के बांधने के रस्से (तंग) का है, और कक्षीवान् हुआ कक्ष्या वाला । घोड़ों का बांधना मुख्य क्षत्रियों का काम है । जब ऐसा है तो क्षत्रियपुत्र होने से कक्षीवान् को प्रतिग्रह (दान लेना) ठीक नहीं बनता, क्योंकि स्मृति 'यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और विशुद्ध से दान लेना' ब्राह्मण का धर्म बतलाती है, इस लिए ब्राह्मण को ही अधिकार है, क्षत्रिय को नहीं ।

उत्तर—यह दोष नहीं आता। यद्यपि कक्षीवान् कलिंगराज का पुत्र था, पर कलिंगराज ने स्वयं वृद्ध होने से संतानोत्पादन के असमर्थ होने से दीर्घतमा ऋषि से संतानोत्पादन की प्रार्थना कर अपनी रानी को आज्ञा दी, उस ने उस वृद्ध महर्षि से लज्जा खाकर **उशिक्** नाम्नी अपनी दासी को अपने भूषण वस्त्रों से सजा कर अपने प्रतिनिधिरूप से भेज दिया। ऋषि ने (दिव्य दृष्टि से) उसे दासी जान लिया। तब **मन्त्र से पवित्र किये जल से उस का अभिषेक कर उसे ऋषिपुत्री बना कर** उस के साथ रमण किया। उस से उत्पन्न हुआ यह कक्षीवान् ऋषि है। यह सब हम ने पूर्वाध्याय में "नासत्याभ्यां" (१।८।८) पर विस्तार से प्रतिपादन कर दिया है। सो क्षत्रिय के सम्बन्ध से तो इस का नाम कक्षीवान् हुआ और परमर्षि दीर्घतमा से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण होने से दान लेना भी युक्तियुक्त बन जाता है।

पहले इतिहास में तो दासी के पुत्र कवष को उस का अपना आत्मबल देख कर ऋषियों ने उसे अपने समान ऋषि मान अपने अन्दर ले लिया था। पर इस दूसरे इतिहास में

तो दीर्घतमा ऋषि ने अपने ही आत्मबल से एक शूद्रा स्त्री को मन्त्रपूत जल का छींटा देकर तत्क्षण ऋषिपुत्री बना लिया । यह है ऋषि का आत्मबल और मन्त्रों में शुद्धि का बल । इस से यह भी पता लगता है, कि ऋषियों के युग में विजातीयों को शुद्ध करके अपनी जाति में मिलाने की विधि मन्त्रपूत जल से अभिषेक था । यही अभिषेक महात्मा बुद्ध और उसके अनुयायिओं ने बौद्धधर्म में प्रवेश कराने का रक्खा । बौद्धों का ही अनुकरण ईसाइयों ने बपतिस्मा बनाया । और यही अभिषेक खालसा धर्म में अब अमृत चखाने के नाम से प्रसिद्ध है ।

यह कक्षीवान ऋषि शूद्रा से शुद्ध हो कर ब्राह्मणी हुई उशिक् का पुत्र है, यह ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ११६ से १२५ तक १० सूक्तों का और १२६ वें सूक्त के पहले पाँच मन्त्रों का ऋषि है । दूसरे ब्राह्मण ऋषियों के तुल्य ही इसे भी ब्रह्मऋषि माना गया, यहाँ तक कि राजा ने अपनी कन्या देकर इस का सम्मान किया । यह है ऋषियों में आत्मबल और उन के मन्त्रों में शुद्धि का बल ।

ऋषियों के युग में जिस प्रकार धर्म का द्वार विजातियों के लिए खुला था, उस के लिए नीचे लिखा यह एक

ही प्रमाण पर्याप्त होगा । **चक्रवर्ती मान्धाता** का नाम कौन हिन्दू नहीं जानता । इस ने विजययात्रा में बहुत से राजाओं को जीता था । इस ने गान्धार के राजा महामेध को जो चन्द्रवंशी था युद्ध में हराया था । इस के विस्तृत राज्य की प्रशंसा इस प्रकार की गई है—

उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ।
तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्र मुच्यते ॥

(महाभारत द्रोण ६२ । ११)

जहाँ से सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है, वह सारा युवनाश्व के पुत्र मान्धाता का क्षेत्र कहलाता है॥ इस के इतने बड़े विस्तृत राज्य में कई अनार्य जातियाँ भी थीं। उन पर शासन करने के विषय में मान्धाता और इन्द्र का संवाद जो महाभारत में आया है, वह धर्म प्रचार और शुद्धि का जीता जागता एक जाज्वल्यमान उदाहरण है—

मान्धातोवाच ।

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः ।
शकास्तुषाराः कंकाश्च पल्हवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥१३॥
पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठा काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।

ब्रह्म क्षत्र प्रसूताश्च वैश्या शूद्राश्च मानवाः ॥१४॥
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः ॥१५॥
एतदिच्छाम्यहंश्रोतुं भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ।
त्वं बन्धुभूतो ह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर ॥१६॥

मान्धाता बोले—यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कंक, पल्हव, आन्ध्र, मद्रक ॥ १३ ॥ पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ॥ १४ ॥ यह सब मेरे राज्य में रहने वाले कैसे धर्मों पर चलें, तथा मेरे जैसों को सब दस्युजीवी किस तरह धर्म में स्थापन करने चाहियें ॥१५॥ यह मैं सुनना चाहता हूं, हे भगवन् ! मुझे इस बात का उपदेश दीजिये, आप हम क्षत्रियों के बन्धु हैं ॥ १६ ॥

ऊपर कही जातियां वर्तमान में सम्भवतः ये हैं—ओड्र, उडिया की अछूत जातियां और पञ्जाब के ओड । द्रविड दाक्षिणी भारत में प्रसिद्ध हैं । यवन (Ionion ग्रीक) यूनानी, पीछे यह शब्द सिन्धु पार की सभी जातियों के लिए बर्ता गया है । काम्बोज, कम्बोज के रहने वाले

व्रात्य क्षत्रिय, इन का अपना स्वतन्त्र राज्य था, वर्तमान 'कम्बो' उन्हीं में से हैं । दरद, चित्राल और गिलगत आदि उत्तर पश्चिमी देशों में रहते थे । पल्हव, पर्शियन, बर्बर, अफरीका वासी । शक, सीथियन, किरात आदि व्याध थे ।

इन्द्रउवाच ।

मातापित्रोर्हि शुश्रूषा कर्तव्या सर्व दस्युभिः ।
आचार्यगुरुशुश्रूषा तथैवाश्रमवासिनाम् ॥१७॥
भूमिपानां च शुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः ।
वेद धर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते ॥१८॥
पितृयज्ञास्तथा कूपा प्रपाश्च शयनानि च ।
दानानि च यथा कालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा ॥१९
अहिंसा सत्यमक्रोधो वृत्तिदायानुपालनम् ।
भरणं पुत्रदाराणां शौचमद्रोह एव च ॥२०॥
दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्याः भूतिमिच्छता ।
पाकयज्ञा महार्हाश्च दातव्याः सर्वदस्युभिः ॥२१॥
एतान्येवं प्रकाराणि विहितानि पुराऽनघ ।

सर्वलोकस्य कर्माणि कर्तव्यानीह पार्थिव ॥२२॥

(महाभारत शान्ति पर्व, अ० ६५)

इन्द्र बोले—हे राजन्! सब दस्युओं को माता पिता की सेवा करनी चाहिये, तथा आचार्य, गुरु और आश्रमवासियों की सेवा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ सब दस्युओं को राजा की आज्ञा माननी चाहिये, **और धर्म तो उन सब का वेद धर्म का अनुष्ठान है** ॥१८॥ पितृयज्ञ, (धर्मार्थ) कुएँ और प्याऊ लगाएँ और यथा समय ब्राह्मणों को शय्या आदि दान दें ॥१९॥ अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कमाई, दाय की रक्षा, पुत्र स्त्री का भरण पोषण, शौच और अद्रोह उन के धर्म हैं ॥ २० ॥ अपनी वृद्धि चाहते हुए यज्ञ करें और दक्षिणाएँ देवें, और सभी दस्यु बड़े २ पाकयज्ञ करें ॥२१॥ यह और इसी प्रकार के दूसरे **धर्म कार्य जो पूर्व काल में ऋषियों ने विधान किये हैं, जो (न केवल इन के लिए, किन्तु) सारी दुनिया को करने योग्य हैं इन को करने चाहिये** ॥२२॥

यह है वैदिक धर्म के प्रचार की लग्न इन्द्र को, और

यह है दुनिया के कल्याण का मार्ग,दस्युओं तक का हिन्दु धर्म के झंडे तले आजाना ।

जो लोग यह आक्षेप करते हैं, कि हिन्दुधर्म प्रचारक (Missionary) धर्म है ही नहीं, हिन्दुओं ने कभी अपने धर्म का खुला प्रचार किया ही नहीं, इसी लिए अब भी उनको प्रचार का अधिकार नहीं, यह अधिकार मुसल्मानों वा ईसाइयों का ही है, क्योंकि उन के धर्म प्रचारक हैं, उन्हें आँखें खोल कर महाभारत के यह वचन पढ़ने चाहियें । हिन्दु तो उस समय से अपने धर्म का खुला प्रचार कर रहे हैं जब मुसल्मान तो क्या ईसाइयों का भी अभी नाम भी दुनिया में नहीं आया था। जिन जातियों को वैदिकधर्म के झंडे तले लाने का उपदेश इन्द्र ने मान्धाता को दिया है, उन में यवन (ग्रीक) शक आदि बाहर की जातियाँ भी हैं, और ओड्र=उडिया की अछूत जातियाँ और पञ्जाब के ओड भी हैं, जो इस समय अछूत माने जाते हैं। इससे बढ़ कर खुले प्रचार का उदाहरण और क्या हो सकता है। महाभारत युद्ध के पीछे भी दूसरी जातियों का प्रवेश बराबर होता रहा है । भविष्यपुराण ब्रह्मपर्व अध्याय १३९ में यह कथा लिखी है, श्रीकृष्ण के पुत्र **साम्ब** ने चन्द्रभागा के किनारे **साम्बपुर** नाम नगर

बसाया, और वहाँ सूर्य का एक मन्दिर बनवाया । इस मन्दिर का पुजारी कौन हो ? इस प्रश्न के उत्तर में नारद के कहने पर उस ने उग्रसेन के पुरोहित **गौरमुख** से जाकर पूछा । उसने उत्तर दिया । हम ब्राह्मण हैं, देवता का प्रतिग्रह नहीं लेते । तब साम्ब बोले—

अग्राह्यं चेद् द्विजातिभ्यः कस्मै देय मिदं मया ।
श्रुतं वा दृष्टपूर्वं वा तन्मे ख्यातुमर्हसि ॥

(भविष्य० पु० ब्रा० १३९ । २७)

यदि ब्राह्मणों के लिए अग्राह्य है, तो मुझे यह किस को देना चाहिये, ऐसा पुरुष कोई सुना वा देखा हो, तो मुझे बतलाइये । गौरमुख ने उत्तर दिया—

मगाय संप्रयच्छ त्वं पुरमेतच्छुभं विभो ।
तस्याधिकारो देवान्ने देवतानां च पूजने ॥२८॥

हे राजन् ! यह शुभ पुर किसी **मग** को दो । देवताओं का अन्न खाने और देवताओं की पूजा करने का अधिकार उस का है ॥ मग कहाँ मिलेंगे ? इस प्रश्न का उत्तर उसे सूर्य की प्रतिमा से यह मिला—

मम पूजाकरं गत्वा शाकद्वीपादिहानय ।।७१।।

मेरी पूजा करने वाले को जाकर शाकद्वीप से ला।

तब साम्ब मगों को लाने के लिए स्वयं शाकद्वीप (ईरान) में गये। मगों को हिन्दुस्थान में अपने साथ ले चलने का आग्रह किया। वे मान गये।

ततस्तानि दशाष्टौच कुलानी ह समन्ततः ।
आरोप्य गरुड़े साम्बस्त्वरितः पुनरभ्यगात् ।।९१।।

तब इधर उधर से मगों के अठारह कुलों को गरुड़ पर चढ़ा कर साम्ब ले आया ।। उन को सूर्य मन्दिर का पूजारी बनाया और साम्बपुर उसके साथ जागीर लगादी।

इस से आगे अध्याय १४० में वर्णन है, कि साम्ब ने फिर द्वारका में आकर भोजवंशियों से प्रार्थना की, कि वे मगों को अपनी कन्याएँ दें। उन्हों ने स्वीकार किया। तब मगों का बंश इस देश में भोज क्षत्रियों की कन्याओं से चला।

भोजकन्यासु जातत्वाद् भोजकास्तेन ते स्मृताः ।

(भविष्य० ब्राह्म० १४० । ३८)

भोजों की कन्याओं में से उत्पन्न होने के कारण वे

भोजक कहलाये॥ यह शाकद्वीप से आये प्रचारक ब्राह्मणों में मिल गये और अब भी शाकद्वीपी ब्राह्मण कहलाते हैं। और कांगड़ा प्रान्त में भी भोजक पुजारी हैं।

भविष्यपुराण में एक और कथा आर्यावर्त से दूर मिश्र-देश में पहुँच कर वहाँ के म्लेच्छों को शुद्ध करके आर्य-जाति में प्रवेश करने की दी गई है, जिस का समय १००० कलियुग अर्थात् आज से ४००० पूर्व का बतलाया गया है। कश्यप के गोत्र में **कण्व** नामी एक ब्राह्मण हुआ, उसकी पत्नी का नाम था **आर्यावती**। ये ब्राह्मण दम्पती धर्म की मूर्ति थे। इन्द्र की आज्ञा से ये कुरुक्षेत्र में आये और कण्व ने सरस्वती के तट पर एक वर्ष लगातार चारों वेदों का अखण्डपाठ किया—

वर्षमात्रान्ते देवी प्रसन्ना समुपागता।
आर्यसृष्टिसमृद्धौ सा ददौ तस्मै वरं शुभम्॥६॥

वर्ष भर अखण्डपाठ होने पर सरस्वती प्रसन्न हो प्रत्यक्ष हुई और आर्यसृष्टि की वृद्धि करने का उसे शुभ वर दिया॥ सरस्वती के इस प्रसाद से एक तो उस के घर में पुत्र पोतों की वृद्धि हुई, दूसरा—

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ ।
म्लेच्छान् संस्कृत माभाष्य तदा दश सहस्रकान् १५
वशीकृत्य स्वयंप्राप्तो ब्रह्मावर्तें महोत्तमे ।
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् ॥१६॥
पञ्चवर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती ।
सपत्नीकांश्च तान्म्लेच्छाञ्शूद्रवर्णाय चाकरोत् १७
कारुवृत्तिकराः सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः ।
द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ॥१८॥
तन्मध्ये चाचार्यपृथुर्नाम्ना कश्यपसेवकः ।
तपसा स च तुष्टाव द्वादशाब्दं महामुनिम् ॥१९॥
तदा प्रसन्नो भगवान् कण्वो देववराद्वरः ।
तेषां चकार राजानं राजपुत्र पुरं ददौ ॥२०॥

(भविष्य० प्रति सर्ग० खं० ४ अ० २१)

सरस्वती की आज्ञा से कण्व मिश्रदेश में गया, वहाँ के दस हजार म्लेच्छों को संस्कृत भाषा सिखला कर अपने शिष्य बना ब्रह्मावर्त में साथ ले आया । उन्हों ने यहाँ तप

और स्तोत्रों से सरस्वती को प्रसन्न किया ॥ १५–१६ ॥ पाँच वर्ष पूरे होने पर सरस्वती प्रकट हुई और उनकी पत्नियों समेत उन सारे म्लेच्छों को शूद्र वर्ण दिया ॥१७॥ वे सब दस्तकारी की वृत्ति करने लगे और उनकी सन्तति खूब बढ़ी । तब उन में से दो हजार वैश्य हो गये ॥ १८ ॥ उन में से **आर्य पृथु** जो कश्यप का बड़ा सेवक था, उस ने १२ वर्ष कण्व की आराधना की ॥ १९ ॥ तब भगवान् कण्व ने प्रसन्न होकर उसको उनका राजा बनाया और **राजपुत्रपुर** उस की राजधानी बनाई ॥ २० ॥

ये ऐतिहासिक प्रमाण ढिंढोरा दे रहे हैं, कि हिन्दुओं ने अपने धर्म के द्वार मनुष्यमात्र के लिए खुले रक्खे हुए थे और हिन्दुधर्म प्रचारक धर्म था ।

प्राचीनकाल के प्रचार, प्रवेश और शुद्धि की कथा यहाँ समाप्त करते हैं । कल आप को इसी विषय की वह ऐतिहासिक कथाएँ सुनाएँगे, जो महात्मा बुद्ध के जन्म के पीछे की हैं और जिन के विषय में पूरा अनुसन्धान करके पुष्कल प्रमाणों के आधार पर योरुप के और अमेरिका के वर्तमान ऐतिहासिकों ने भी सचाई की मुहर लगा दी है ।

षष्ठोऽध्यायः ।

श्रीगुरु०—प्राचीनकाल के इतिहास से हम ने यह दिखला दिया है, कि पुरा कल्प के ब्राह्मण अहिन्दुओं को हिन्दु बनाते रहे हैं । अब हम बौद्ध काल के इतिहास में प्रवेश करते हैं। महात्मा बुद्ध का समय ५५७ से ४७७ वर्ष ईसा से पूर्व का माना गया है । महात्मा बुद्ध ने जिस धर्म का उपदेश दिया, वह बौद्ध धर्म कहलाता है । बौद्ध धर्म भी जैनधर्म की नाईं एक हिन्दुसम्प्रदायविशेष है । इस धर्म के प्रवर्तक गौतमबुद्ध स्वयं क्षत्रिय थे । उस समय हिन्दुओं में जात्स-भिमान बढ़ गया था, अतएव सदाचार पर अधिक बल नहीं रहा था । इसी का सुधार बुद्ध ने अपना उद्देश्य ठह-राया था, अतएव उन्होंने इसी बात पर अधिक बल दिया। उन को यह पूरा विश्वास था, कि मैं ऋषियों के प्राचीन धर्म का ही प्रचार कर रहा हूं । सर्वथा उस के हिन्दु सम्प्रदाय होने में कोई संदेह नहीं। वही पुनर्जन्म, वही इन्द्रादि देवता, वही लोक परलोक, वही आचार, वही योग, उस का मन्तव्य था, जो दूसरे सारे हिन्दु सम्प्रदायों का मन्तव्य था। हाँ ईश्वर की पूजा का स्थान इस में बुद्ध की पूजा ने और वेद की प्रमाणता का स्थान बुद्ध के उपदेशों ने लिया है। पर यह दोनों

बातें उस के सम्प्रदाय में पीछे से आई हैं, स्वयं गौतमबुद्ध अपने उपदेशों में इन दोनों बातों से उदासीन रहे हैं। पुराणों में बुद्ध को भी विष्णु का एक अवतार माना है। सर्वथा यह शुद्ध हिन्दु सम्प्रदाय है, इस में तनिक संदेह नहीं। अब इस सम्प्रदाय ने जिस उत्साह के साथ देश-देशान्तरों में पहुँच कर अपने धर्म का प्रचार किया, वह इतिहास के जानने वालों से छिपा नहीं है। इसी प्रचार का यह फल है, कि हिन्दुस्थान में इस का बल सर्वथा टूट जाने पर भी यह धर्म लंका, ब्रह्मा, तिब्बत, चीन और जापान तक अब भी फैला हुआ है। इस ने सब जातियों के लोगों को प्रीति के साथ अपने धर्म में प्रविष्ट किया।

गौतमबुद्ध ने जिस धर्म पर चलने से मनुष्यों का कल्याण समझा, उस धर्म को सारे मनुष्यों तक पहुँचाना भी अपना कर्तव्य समझा, और सर्वत्र घूम २ कर सब मनुष्यों को इस धर्म में दीक्षित करने की अपने शिष्यों को आज्ञा देते हुए कहा 'तुम में से कोई दो, एक ही मार्ग से न जाएँ। हे भिक्षुओ! इस सिद्धान्त का उपदेश करो, जो कि उत्तम है' (महावग्ग १।११।१) और सर्व साधारण में प्रचार की सरलता के लिए उस ने लोक भाषा में प्रचार की

आज्ञा दी । एक बार संस्कृत के पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण यमेलु और ठेकुल ने, जो दोनों सगे भाई थे और बुद्ध के शिष्य बने थे, बुद्ध के वाक्यों को संस्कृत छन्दोबद्ध करने की आज्ञा मांगी, तो उस ने कहा 'हे भिक्षुओ ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं, कि तुम बुद्धों के वाक्य अपनी २ भाषा में ही सीखो ' (चुल्लवग्ग २ । ३३ । १) । सो बौद्धधर्म हिन्दुओं में तो इस लिए बहुत शीघ्र फैला, कि दूसरे हिन्दु-सम्प्रदायों की नाईं यह भी एक हिन्दुसम्प्रदायविशेष ही था । महात्मा बुद्ध का अपने अन्तिम श्वास तक यह विश्वास बना रहा है, कि वह उसी प्राचीन और पवित्र धर्म की शिक्षा देता है, जो प्राचीन आर्यों अर्थात् ब्राह्मणों और दूसरे हिन्दुओं में प्रचलित था, परन्तु समय के फेर से अब बिगड़ गया है । और यह बात सत्य थी, क्योंकि उस के आचार व्यवहार और मन्तव्य के सारे उपदेश हिन्दुशास्त्रों में पाये जाते थे । उसका मुख्य उद्देश्य आडम्बरों को हटा कर उसके स्थान पर सदाचार का स्थापन करना था । दूसरे हिन्दु भिक्षुओं के भी उस समय कई सम्प्रदाय थे, जो श्रमण कहलाते थे, वैसे ही बुद्ध सम्प्रदाय में भी भिक्षु श्रमण कहलाते थे । हाँ दूसरे सम्प्रदायों से उन का भेद करने के लिए उन्हें

शाक्य श्रमण कहते थे। ऐसी अवस्था में कोई ऐसा कारण न था, कि ब्राह्मणों की ओर से इस मत का कोई विशेष विरोध किया जाता। अतएव इस सम्प्रदाय में सभी प्रविष्ट हुए, शूद्र भी और ब्राह्मण भी और सब ने मिल कर इस का प्रचार किया । और जब सम्राट् अशोक ने इस धर्म को ग्रहण किया, तो उस ने इस के प्रचार में सब से बढ़ कर उत्साह दिखलाया। लंका में प्रचार के लिए उस ने अपने पुत्र महिन्द (महेन्द्र) और अपनी कन्या चारुमती को भेजा । महिन्द ने शीघ्र ही वहाँ के राजा को बौद्ध बना लिया । अशोक ने ब्रह्मा, कश्मीर, गान्धार और यूनानी राज्यों में भी प्रचारक भेजे । जहाँ उन्हें इस धर्म के प्रचार में बड़ी सफलता हुई । धीरे २ यह धर्म चीन, जापान, कोरिया, कोनन, फारमूसा, मंगोलिया, स्याम, जावा, सुमात्रा, तिब्बत, नेपाल, काबुल, ताशकन्द, बलख, बुखारा तथा अन्य देशों में फैल गया। सर रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं, कि ईसा की पाँचवीं और दसवीं शताब्दी के बीच समस्त मनुष्य जाति के आधे से अधिक लोग बौद्ध थे। इस समय भी सब से अधिक संख्या बौद्ध धर्मियों की है। यह है धर्म प्रचार में हिन्दुओं के उत्साह

का फल । इतना बड़ा प्रचार तो दूसरी जातियों में और किसी भी धर्म ने नहीं किया और न ही किसी अन्य धर्म को ऐसी सफलता प्राप्त हुई है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि दूसरी जातियों में प्रचार का काम अब हिन्दु नया आरम्भ करने लगे हैं, साहसमात्र है । हिन्दुस्थान से बाहर के देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार अब भी हिन्दुओं के खुले प्रचार की साक्षी दे रहा है । भूलना नहीं चाहिये, कि बौद्ध धर्म एक हिन्दु साम्प्रदायिक धर्म है और यहाँ के हिन्दुओं ने ही जिन में ब्राह्मण भी सम्मिलित थे, दूसरे देशों में पहुँच कर उस का प्रचार किया है ॥

अब इस बात का जानना आवश्यक है, कि ब्राह्मणों के अपने स्वतन्त्र प्रचार की उस समय क्या अवस्था थी। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि उस समय के सभी वैदिक सम्प्रदाय बाहर से आई जातियों को अपने २ सम्प्रदाय में दीक्षित करने और उनको धर्म के सारे अधिकार देने के लिए तय्यार पर तय्यार रहते थे। जैसा कि—

मुरुण्ड—यह एक अनार्य जाति का नाम है, जो ईसा के जन्म से कई शताब्दियां पहले आर्यावर्त में आ घुसी । इस बलवती जाति ने दूसरी कई अनार्य जातियों को साथ

मिला कर चन्द्रवंशी राजा **क्षेमक** को युद्ध में मार डाला। विष्णुपुराण (अंश ४ । २१ । ४) में यह भविष्य वचन लिखा है—

ब्रह्म क्षत्रस्य यो योनिर्वंशो राजर्षिसत्कृतः ।
क्षेमकं प्राप्य राजानं स संस्थां प्राप्स्यते कलौ ॥

कई ब्राह्मण वंशों और क्षत्रिय वंशों का मूल भूत, राजऋषियों से सत्कृत, यह चन्द्रवंश कलियुग में **क्षेमक** राजा तक पहुंच कर समाप्त होगा ।

यह भविष्यवचन चन्द्रवंशियों की राजधानी हस्तिनापुर के विजय से सम्बन्ध रखता है । क्षेमक के पीछे (भविष्य के अनुसार क्षेमक का पुत्र) राजा **प्रद्योत** बहुत बड़ा शूरवीर निकला। जिस तरह नागों से परीक्षित का बदला लेने के लिए उस के पुत्र जनमेजय ने नागयज्ञ किया था, इसी तरह म्लेच्छों से क्षेमक का बदला लेने के लिए प्रद्योत ने म्लेच्छ यज्ञ रचा । भविष्यपुराण प्रति सर्ग पर्व अध्याय ३ में लिखा है—

हारहूणान् बर्बरांश्च मुरुण्डांश्च शकान्खसान् ।

यवनान् पल्लवाँश्चैव रोमजान् खरसम्भवान् ॥७॥
द्वीपस्थितान् कामरूंश्च चीनान् सागरमध्यगान् ।
प्राहूय भस्मसात् कुर्वन् वेदमन्त्रप्रभावतः ॥८॥

हार, हूण, वर्बर, मुरुण्ड, शक, खस, यवन, पर्शियन रोमन, गर्दभिल, कामरू, चीन और और टापुओं में रहने वाली अन्य म्लेच्छ जातियों को वेद मन्त्रों के प्रभाव से (प्रद्योत ने) भस्मसात किया ॥ इस से स्पष्ट है, कि ये मुरुण्ड म्लेच्छ (अनार्य) जाति के थे । मत्स्यपुराण की वंशावलि में आया है—

शतान्यर्धचतुष्कानि भवितव्यास्त्रयोदश ।
मुरुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥

म्लेच्छ वंश के १३ मुरुण्ड राजे वृषलों के साथ ३५० वर्ष भूमि को भोगेंगे ।

अब यह तो स्पष्ट हो गया, कि ये मुरुण्ड म्लेच्छ (अनार्य) थे । मुरुण्ड नाम भी बाहर का है । ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ये आर्य क्षत्रियों में मिल गये थे । उस समय वत्सदेश का बड़ा प्रबल राजा जो **उदयन** हुआ है, वह मुरुण्ड था ।

जैसा कि जैनियों के पार्श्वाभ्युदयकाव्य में उदयन के विषय में कहा है—**तीक्ष्णस्यारेः स किल कलहे युद्ध शौण्डो मुरुण्डः**=चण्ड (प्रद्योत) शत्रु के युद्ध में युद्धनिपुण वह मुरुण्ड (उदयन) ॥

इस उदयन के समय अर्थात ईसा से पूर्व ५०० वर्ष यह मुरुण्डजाति आर्य जाति में इस प्रकार लीन होगई थी, कि अब इन से कोई भिन्न भेद नहीं रहा था, यह शुद्ध क्षत्रिय बन गये थे । उज्जैन के महाबली राजा **चण्डप्रद्योत** की कन्या **वासवदत्ता** और मगध के राजा **दर्शक** की बहिन **पद्मावती** इस से ब्याही थीं ।

आर्यों में सम्मिलित हुई मुरुण्ड जाति का यह राजा अपने आर्य गुणों के कारण आर्य ब्राह्मणों का बहुत बड़ा आदरणीय हुआ है। भास ने **स्वप्न वासवदत्तम्** और **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** ये दो नाटक और सुबन्धु ने **वासवदत्ता** गद्यकाव्य केवल उदयन के वर्णन में लिखे हैं । **सोमदेव** ने **कथासरित्सागर** में इस का जीवनचरित दिया है

और कालिदास आदि ने भी प्रसंगतः बड़े आदरणीय शब्दों में इस का नाम लिया है।

ये मुरुण्ड जो आर्यों में सम्मिलित हुए, कोई साधारण जन नहीं थे । जैनियों के प्रभावित चरित से पता लगता है, कि विक्रमादित्य से स्वल्प काल (कोई एक पीढ़ी) पीछे पाटलिपुत्र का राजा मुरुण्ड था। और इस से ३०० वर्ष पीछे कम्बोदिया (जो उस समय एक हिन्दु उपनिवेश था) से राजदूत आये थे, उस समय भी भारत का राजा मुरुण्ड था।

गर्दभिल—यह भी एक अनार्यजाति बाहर से आर्यावर्त में आई थी। विष्णुपुराण अंश ४ में अनार्य जातियों के मध्य में इस का वर्णन है—**सप्ताभीरा दशगर्दभिला भूभुजो भविष्यन्ति ततः षोडशका भूभुजो भवितारः । ततश्चाष्टौ यवनाश्चतुर्दश तुषारा मुण्डाश्च त्रयोदश एकादश मौनाः। एते पृथिवीं त्रयोदश शतानि नव नवत्यधिकानि भोक्ष्यन्ति (२४।१४)** सात अहीर और दस गर्दभिल राजे होंगे, तदनन्तर सोलह

शक राजे होंगे, फिर आठ यवन, चौदह तुषार, १३ मुण्ड और ११ मौन, ये सब मिल कर १३९९ वर्ष पृथिवी को भोगेंगे ।" **कालिकाचार्य कथानक** (जैनियों की एक पुस्तक) से पता चलता है, कि विक्रमादित्य जो एक सच्चा आर्य क्षत्रिय था, वह इन्हीं गर्दभिलों का दूसरा राजा था ।

यूनानी—अलक्षेन्द्र के प्रधान सेनापति और उत्तराधिकारी सेल्यूकस की पुत्री एथेना का विवाह (३०३ ई० पूर्व) चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ । चन्द्रगुप्त अपने पूज्यगुरु चाणक्य की आज्ञा के बिना एक पाओं नहीं उठाता था। अतएव यह निःसंदेह है, कि यह सम्बन्ध चाणक्य की इच्छा और आज्ञा से हुआ था । और चाणक्य कट्टर ब्राह्मण था । सो इस ग्रीक कन्या का चाणक्य की आज्ञा द्वारा हिन्दुजाति में प्रवेश इस बात का साक्षी है, कि उस समय के ब्राह्मण हिन्दुजाति में दूसरी जातियों का प्रवेश खुल्लमखुल्ला करते थे ।

ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में **हेल्योडोरसग्रीक** ने बेस नगर (सी० पी०) में एक स्तम्भ खड़ा किया, जिस पर लिखे लेख में वह वासुदेव के प्रति अपनी भक्ति प्रका-

शित करता है। (देखो जरनलरायल ऐशियाटिकसोसायटी १९०९ पृष्ठ १०५३-९३) इस से सिद्ध है, कि वैष्णव हिन्दुओं ने हेल्योडोरस को वैष्णव हिन्दु बना लिया था।

२५० ई० पूर्व से लेकर हर्ष के समय (६०६-६४७) तक पश्चिमोत्तर की ओर से कई जातियाँ भारत में आई, और यहीं बस गई अथवा उन में से कुछ ही लोग वापिस गये, शेष सब यहीं के हो गये और हिन्दुओं में इस प्रकार लीन हो गये, कि उन में और आदि हिन्दुओं में कोई भेद शेष नहीं रहा। इन में से कुछ प्रसिद्ध २ वृत्तान्त उदाहरणार्थ यहाँ लिखे जाते हैं।

यूनानी—अलक्षेन्द्र के पीछे बाखर के यूनानी राजे अफगानिस्तान और पञ्जाब के कुछ भाग पर राज्य करते रहे। इन में सब से प्रसिद्ध राजा **नीलाण्डर** (ईसा से ११० वर्ष पूर्व) था, जिसे बौद्धों ने **मलिन्द** लिखा है। यह बौद्ध हो गया था, 'मिलिन्द पनहो' नाम के एक प्राकृत ग्रन्थ में इस का सविस्तर वर्णन है। और यूनानी सारे ही हिन्दुओं में मिल गये थे। पीछे उन का कोई अलग नाम नहीं रहा।

कुशान शक—यह जाति चीनी तुरकस्तान से निकल कर काबुल से होती हुई पहली शताब्दी ई० में भारत में प्रविष्ट हुई । इस के राजा कैडफीअस के जो सिक्के मिले हैं उन के एक ओर शिव और दूसरी ओर नन्दी की मूर्ति है । इस से स्पष्ट है, कि वह शैव सम्प्रदाय में सम्मिलत हो गया था । इस वंश में हविष्क, जुष्क, कनिष्क हुए हैं । इन्हों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था । इन के विषय में राजतरङ्गिणी प्रथमतरङ्ग में लिखा है—

अथाभवन्स्वनामाङ्क पुरत्रय विधायिनः ।
हुष्क जुष्क कनिष्काख्यास्त्रयस्तत्रैव पार्थिवाः ॥
स विहारस्य निर्माता जुष्को जुष्कपुरस्य यः ।
जयस्वामिपुरस्यापि शुद्धधीः संविधायकः ॥१६९
तुरुष्कान्वयोद्भूता अपि पुण्याश्रया नृपाः ।
शुष्कलेत्रादिदेशेषु मठचैत्यादि चक्रिरे ॥१७०॥

इस के पीछे अपने २ नाम पर तीन पुरों की नींव डालने वाले **हुष्क, जुष्क** और **कनिष्क** ये तीन राजे वहीं हुए । इन में से जुष्क ने जुष्कपुर, जयस्वामिपुर और

एक विहार (बौद्ध मठ) बनवाया। ये सब तुरकों के वंश में उत्पन्न हुए पुण्यात्मा राजे हुए हैं, जिन्हों ने पुष्कलेत्र आदि देश में मठ और चैत्य आदि बनाए ॥ इन में से कनिष्क बौद्धधर्म का बहुत बड़ा सहायक हुआ है। इस के समय में बौद्धों का तीसरा संघ कश्मीर में हुआ, और चीन आदि महादेशों में बौद्धधर्म का प्रचार किया गया। कनिष्क का पुत्र वासुदेव हुआ । यह नाम ऊपर के नामों से सर्वथा विलक्षण एक हिन्दु नाम है । कारण यह कि यह वैष्णव हिन्दु बन गया था।

स्मिथमहोदय नये शोध के अनुसार इन राजाओं का ऐतिहासिक क्रम—कैडफीयस प्रथम, कैडफीयस द्वितीय, कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव, इस प्रकार रख कर लिखते हैं—

Huvishka was succeeded by Vasudeva, whose thoroughly Indian name, a synonym for Vishnu is a proof of the rapidity with which the foreign invaders had succumbed to the influence of their environments. Testimony to the same fact is borne by his coins, almost all of which exhibit on the reverse the figure of the Indian God Siva,. attended by his bull Nandi, and accompanied by

the noose, trident, and other insignia of Hindu iconography. (Early History of India by V. A. Smith page 288).

हुविष्क का उत्तराधिकारी वासुदेव हुआ, जिस का सर्वथा भारतीय नाम (जो कि विष्णु का पर्यायवाची है) इस बात का प्रमाण है, कि किस शीघ्रता से विदेशीय आक्रमण करने वाले अपनी परिस्थिति के प्रभाव से दब चुके थे । इसी बात की साक्षी उस के सिक्कों से मिलती है । प्रायः उस के सब सिक्कों की दूसरी ओर भारतीय देवता शिव का चित्र है । शिव के साथ उस का वृषभ नन्दी, त्रिशूल, और हिन्दू मूर्तियों के अन्य चिन्ह हैं ।

क्षत्रप वा महाक्षत्रप-शक यह जाति बहुत बड़ी संख्या में ईरान से आकर भारत में प्रविष्ट हुई । इन का विदेशी होना सर्व सम्मत है । भूमक, नहपान और चष्टन के सिक्कों पर खरोष्ठी अक्षर हैं, ब्राह्मी नहीं, इस से सिद्ध है, कि ये विदेशी थे । नहपान, चष्टन, दामजद आदि नाम भी विदेशी हैं । उज्जैन में दूसरी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक इन का राज्य रहा है । यह

पूरे हिन्दु बना लिये गये थे । रुद्रदामा जो बड़ा प्रसिद्ध महाक्षत्रप हुआ है, उस के दादा का नाम **स्वामी चष्टन** था। चष्टन हिन्दु नाम नहीं, ईरानी है, पर उस के साथ शाह के स्थान स्वामी पद का प्रयोग उस के हिन्दु हो जाने पर संस्कृत की ओर झुकाव का फल है। इस के आगे तो नाम भी हिन्दुओं के ही हो गये हैं । चष्टन का पुत्र जयदामा और उस का पुत्र रुद्रदामा हुआ । रुद्रदामा का गिरनार का प्रसिद्ध शिलालेख (१५० ई० का) ललित संस्कृत में हैं ।

हूण—इस जाति के लोग मध्य ऐशिया से निकल कर इधर भारत और उधर योरुप की ओर चढ़े। ये बड़े क्रूरप्रकृति थे। इनकी क्रूरता से भारत और योरुप दोनों त्राहि २ कर उठे थे। इन में से **तोरमान** और **मिहिरकुल** इन दो राजाओं के शिलालेख इन्दौर के निकट संस्कृत में मिले हैं। और जो सिक्के मिले हैं, उन पर शिव की मूर्ति है, इस से स्पष्ट है, कि ये शैव सम्प्रदाय में प्रविष्ट हो गये थे। राजतरङ्गणी में मिहिर कुल के विषय में लिखा है—

अथ म्लेच्छगणाकीर्णे मण्डले चण्डचेष्टितः ।

तस्यात्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमोनृपः ॥२८९

दक्षिणां सान्तकामाशां स्पर्धया जेतुमुद्यता ।
यन्मिषादुत्तरहरिद्बभारान्यमिवान्तकम् ॥२९०

बालेषु करुणां स्त्रीषु घृणां वृद्धेषु गौरवम् ।
न बभूव नृशंसस्य यस्य घोराकृतेर्घ्नतः ॥२९३॥

तब म्लेच्छगणों से भरे हुए मण्डल में उस का पुत्र मिहिरकुल, काल तुल्य क्रूरकर्मा राजा हुआ ॥ २८९ ॥ स्पर्धा के कारण दक्षिण दिशा को अन्त तक जीतने की कामना से मानो तय्यार हुई उत्तर दिशा ने जिस के बहाने से यम को धारण किया था ॥ २९० ॥ उस भयंकर आकृति वाले नरघाती को मारते समय न बालों पर करुणा, न स्त्रियों पर दया, न वृद्धों में गौरव होता था ॥ २९३ ॥ इत्यादि उस के बड़े २ क्रूर कर्मों का वर्णन कर और उन पर बड़ी घृणा दिखला कर भी हिन्दु धर्म में उसकी प्रवृत्ति इस प्रकार दिखलाई है–

को वेत्त्यद्भुतचेष्टानां कृत्यं प्राकृतचेतसाम् ।
धर्मं सुकृत् संप्राप्तिहेतोः सोऽपि यदाददे ॥३०५॥

श्रीनगर्यां हि दुर्बुद्धिर्विदधे मिहिरेश्वरम् ।
होलडायां स मिहिरपुराख्यं पृथुपत्तनम् ॥३०३॥
अग्रहाराञ्जगृहिरे गान्धारा ब्राह्मणास्ततः ।
समानशीलास्तस्यैव ध्रुवं तेऽपि द्विजधमाः ॥३०७

अद्भुत चेष्टा वाले अविनीत लोगों के कृत्य को कौन जान सकता है, यतः पुण्यप्राप्ति के लिए उस ने भी धर्म को ग्रहण किया ॥ ३०५ ॥ श्रीनगर में उस दुर्बुद्धि ने **मिहिरेश्वर** स्थापन किया और होलडा में **मिहिरपुर** नामी एक बड़े पत्तन की नींब डाली ॥ ३०६ ॥ गान्धारी ब्राह्मणों ने उस से अग्रहार (राजा की ओर से ब्राह्मणों को मुआफी दिये ग्राम) ग्रहण किये, निःसंदेह वे भी ब्राह्मणाधम उसी के समानस्वभाव (क्रूरप्रकृति) थे ।

राजतराङ्गणी के कर्ता को ऐसे निर्दय का धर्म स्वीकार करना भी आश्चर्य में डालता था, पर यह निःसंदेह है, कि यह हिन्दु बन गये थे। इनका राज्य ४९० से ५२८ ई० तक रहा। इतने थोड़े काल में भी इन्होंने बड़े ही अत्याचार किये। इन में से बहुत से हूण भारत में बस गये, और वे सब हिन्दु बन गये। अब भी हिन्दुओं मे हूण जाति विद्यमान है ।

गुर्जर—इस जाति के लोग भी बाहर से आकर लाट देश में, जिसे अब गुजरात (गुर्जरत्र) कहते हैं बसे थे। चीनी यात्री ह्वेन्त्संग लिखता है, कि सातवीं शताब्दी के आरम्भ में ही ये इस प्रकार हिन्दुओं मे मिल गये थे, कि इन को सब क्षत्रिय मानते थे। राजस्थान के 'गुर्जर गौड़ ब्राह्मण' और 'बड़ गूजर राजपूत' इसी वंश के हैं। ये शिवालक आदि पर्वतों से आते थे और बगदाद तक इन के विवाह सम्बन्ध होते थे।

इसी प्रकार छोटी २ अनेकों जातियों की जातियां हिन्दु बना लीं गईं और हिन्दुओं में इस प्रकार एक हो गईं, जैसा कि वर्षा की बूंदे समुद्र में।

इस प्रकार वैदिकहिन्दु और बौद्धहिन्दु दोनों ही बाहर से आई जातियों को अपने २ धर्म में दीक्षित कर हिन्दु बना लेते रहे हैं। चीनी यात्री फाहियान जब (लग भग ४०० ई० में) भारत में आया। उस समय काबुल तक शुद्ध हिन्दुप्रदेश था। वह अपनी यात्रा उद्यान (=बगीचा) अर्थात् काबुल के आस पास के देश से आरम्भ करता है और लिखता है, कि वहीं से उत्तरीभारतवर्ष आरम्भ

होता है । उस समय उद्यान में मध्य भारत की भाषा बोली जाती थी और यहाँ के लोगों का पहरावा और भोजनादि भी मध्यभारत के लोगों का सा था । उद्यान में बौद्ध हिन्दु और जावा सुमात्रा और कम्बोडिया में वैदिक हिन्दु थे । उस समय बौद्ध हिन्दु और वैदिक हिन्दुओं में कोई बैर विरोध नहीं था । पीछे जब बौद्धों ने बल पकड़ कर वैदिकधर्मियों से घोर विरोध आरम्भ किया, तब ब्राह्मण भी मुकाबिले को तय्यार हो गये । परस्पर की स्पर्धा में दोनों ओर बड़े २ धुरन्धर विद्वान उत्पन्न हुए, पर इन में ब्राह्मण बौद्धों से बाज़ी ले गये, और अन्ततः **श्री कुमारिल-भट्टाचार्य** और **श्री शंकराचार्य** इन दो महापण्डितों ने तो बौद्ध विद्वानों को सर्वथा परास्त कर दिया । बौद्धों को फिर वैदिक हिन्दु बना लिया गया, और बौद्ध धर्म से वैदिक धर्म में आने में उन से कोई प्रायश्चित्त नहीं कराया गया । वेदों पर विश्वास ले आना ही उन का प्रायश्चित्त था । और ऐसा आश्चर्य कर दिखलाया, कि मध्य भारत में प्रायः सभी बौद्धों को वैदिकधर्मी बना लिया, यद्यपि वे पहले इतना बल पकड़ चुके थे, कि भविष्यपुराण बतलाता है—

स नाम्ना गौतमाचार्यो दैत्यपक्षविवर्धकः ।
सर्वतीर्थेषु तेनैव यन्त्राणि स्थापितानिवै ॥३१॥
तेषामधोगता ये तु बौद्धाश्चासन् समन्ततः ।
शिखासूत्रविहीनाश्च बभूवुर्वर्णसंकराः ॥३२॥
दश कोटयः स्मृताः आर्या बभूवुर्बौद्धमार्गिणः ।
पञ्च लक्षास्ततः शेषाः प्रययुर्गिरिमूर्धनि ॥३३॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० अ० २१)

वह नाम से गौतमाचार्य हुआ, जिस ने दैत्यों के पक्ष को बढ़ाया, सब तीर्थों पर उस ने यन्त्र स्थापन किये ॥ ३१ ॥ जो उन के नीचे गये वे सब बौद्ध बनते गये, शिखा सूत्र से हीन वर्ण संकर हो गये ॥३२॥ दस करोड़ आर्य बौद्ध-मार्गी हो गये, केवल पांच लाख बचे, जो बिन्ध्याचल की चोटी पर गये इत्यादि ॥ यह वर्णन बढ़ा कर किया हो, पर यह निःसंदेह है, कि बौद्धों की संख्या बहुत ही बढ़ गई थी। ब्राह्मणों ने एक बार अपने धर्म को फिर संभाला और मध्य भारत में प्रायः सभी बौद्धों को फिर वैदिकधर्मी बना लिया। हाँ सीमान्त प्रदेश में बौद्ध हिन्दु और वैदिक हिन्दु

दोनों साथ २ टिके रहे, न वहाँ के ब्राह्मणों ने ही बल पकड़ा, न यहाँ के ब्राह्मणों ने वहाँ धावा किया । निदान हिन्दुजाति में इतर जातियों का प्रवेश बराबर होता ही चला गया, जब तक भारत में मुसल्मानों का प्रवेश नहीं हुआ ।

सप्तमोऽध्यायः ।

शुद्धि से निवृत्ति और पुनः प्रवृत्ति के वर्णन में

अब हम इतिहास के उस युग पर आ पहुँचे हैं, जब कि हिन्दुओं में इतर जातियों के प्रवेश का द्वार बन्द हुआ अथवा बन्द करना पड़ा ।

५७० ई० में मक्के में हज़रत मुहम्मद का जन्म हुआ। चालीस वर्ष की आयु (६१०) में उन्हों ने पैगम्बरी का दावा किया और धर्म प्रचार में लगे। ६३२ में इनकी मृत्यु हुई, अर्थात् २२ वर्ष इन्हों ने प्रचार किया । इन को अपने धर्म प्रचार के लिए केवल उपदेश ही नहीं देना पड़ा, किन्तु अपने विरोधियों से लड़ाइयां भी लड़नी पड़ीं । अरब के सभी लोग लड़ना खूब जानते थे, इस लिए इन के अनुयायिओं का दल एक सैनिक दल बन गया । पहले पहल तो इस दल की कोई बड़ी शक्ति न थी, प्रत्युत विरोधियों की

शक्ति बहुत प्रबल थी। इस कारण हज़रत साहेब को अपने बचाव के लिए अपने साथियों समेत मक्का छोड़ मदीने भाग जाना पड़ा। इसी का नाम हिजरत है। यह ६२२ ई० में हुआ। और इसी दिन से मुसल्मानों का सन् हिजरी आरम्भ होता है। मुसल्मान स्त्री पुरुष सभी मक्के से भाग कर मदीने में आ इकट्ठे हुए। यहाँ आकर उन्हों ने इस सैनिक शक्ति से भी काम लेना आरम्भ किया। मक्के से शाम देश को सौदागरों के जो काफिले व्यापार के लिए जाते थे, उन्हें मार कर उन का माल लूट लेने के लिए हज़रत साहेब अपने सैनिकों को भेजने लगे, और कभी २ स्वयं भी साथ जाते थे। लूट के माल में से पाँचवाँ भाग हज़रत का और शेष माल सारे सैनिकों में बट जाता था। लूट की स्त्रियें भी उनके हाथ आती थीं। सो उनकी शक्ति बराबर बढ़ती गई। मक्के से भाग निकलने के आठ वर्ष पीछे मक्के को जीत लिया। और आस पास भी उन का विजय होता गया।

हज़रत मुहम्मद ने अपने अनुयायी सैनिक दल को घोषणा दी, कि तुम्हारे लिए परमेश्वर की आज्ञा यह है—

" कातिलुल लज़ीना ला यो मे नूना बिल्लाए वला यौमि-

ल्लाखरे वला युहर्रें मूना मा हर्म अल्लाहो व रसूलहु वला यदी नूना दीनल हक्के मनिल्लज़ीना ऊतुल किताबा हत्ता यातुल जज़िय ता अं यदिम व हुम्मसागरून। (कुरान शरीफ, पारा १० सूरः तोबः (९ रकूअ ४ आयत ५)

अर्थ—कतल करो उन लोगों को जो नहीं ईमान लाते साथ अल्लाह के और न साथ दिन पिछले के और न ही हराम जानते उस चीज़ को कि हराम किया है अल्लाह ने और रसूल उस के ने, और न ही कबूल करते दीन सच्चा उन लोगों से जो दिये गये हैं किताब, यहाँ तक कि देवें जज़िया हाथ अपने से और वह ज़लील हैं॥ इसका सीधा अर्थ यह है, कि जो मुसलमान नहीं, वे ज़लील हैं, वे या तो मुसलमान हो जायँ, या जज़िया दें, नहीं तो "कातेलुल्ल ज़ीना ला योमे नूना बिल्लाए"। और कि—

"लायत तखज़िल मोमिनल्लु काफरीना औलिया मिनदुनिल्लु मोमनीन व मंयफल ज़ालिका फलैसा मिनिल्लाए=न पकड़ें मुसलमान काफिरों को दोस्त सिवाय मुसलमानों के और जो कोई करे, यह अल्लाह से नहीं है॥ यह वर्ताव तो हुआ उन लोगों के लिए, जो मुसलमान हुए नहीं, पर जो एक बार मुसलमान हो कर फिर मुसलमानी मज़हब से फिर जायँ वे मुरतिद हैं, उन के लिए दण्ड प्राणदण्ड है।

हज़रत मुहम्मद साहेब एक नये धर्म के प्रवर्तक भी थे, सेनापति भी थे, काल सातवीं सदी का पूर्वार्ध और देश अरब था, इन के विरोधी अरब भी उन से कोई कसर उठा नहीं रखते थे, ऐसी परिस्थिति में ऐसी धार्मिक आज्ञाओं का होना स्वाभाविक था, पर इसका फल दूसरी जातियों के लिए बहुत भयंकर निकला। धर्म फैलाने का नया जोश और सैनिकों के लिए उन की प्रवृत्तियों के अनुकूल खुदाई हुक्म। इस लहर के सामने भला कौन ठहरता। रूम, शाम, मिश्र आदि मुसलमान हुए। अरब के सैनिकदल को ख़लीफ़ा उमर की आज्ञा मिली कि ईरान पर चढ़ाई करो और यदि वे लोग खुशी से इसलाम कबूल करें, तो बहतर, नहीं तो उनको तलवार के बल से कुरान का श्रद्धालु और मुहम्मद का अनुयायी बनाओ। जब मुसल्मानों का विजय हुआ, तब जो ईरानी अपने धर्म से नहीं डिगे, उन को देश छोड़ना पड़ा। यहाँ भारत में जो पारसी हैं, ये धर्मरक्षा के लिए ही देश छोड़ कर आये हुए हैं। इन ऐतहासिक घटनाओं के देने से हमारा अभिप्राय यह है, कि एक तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाय, कि क्यों हिन्दुओं ने घर में आये मुसल्मानों को हिन्दु बनाने

की चेष्टा न की, जब कि वे उन से पहले आई सभी जातियों को अपने अन्दर मिला लेते रहे हैं, दूसरा यह कि मुसल्मानों के इस धार्मिक जोश और सैनिक बल के सामने हिन्दु धर्म ने कितनी हानि उठा कर किस प्रकार अपनी रक्षा का उपाय निकाला।

अलबरूनी लिखता है, कि इसलाम के आरम्भ में सारे मध्य ऐशिया में बौद्ध धर्म फैला हुआ था और ईरान, इराक, अजम और रूम शाम में बौद्ध धर्म और बौद्ध फिलासफी का गहरा प्रभाव था। और ह्वेन्त्सांग जो भारत की यात्रा के लिए ६२९ में (हज़रत की मृत्यु से ३ वर्ष पूर्व) चीन से चला, उसने अपनी यात्रा में सारे अफगानिस्थान को शुद्ध हिन्दु प्रान्त देखा। उस समय वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार अधिक था, पर वैदिकधर्मी भी बहुतेरे थे। वह लिखता है, जलालाबाद की प्राचीन राजधानी नगरहार में ५ शिव के मन्दिर और १०० पूजा करने वाले थे। गान्धार-प्रान्त में बौद्धों के १,००० मठ थे और वैदिक हिन्दुओं के १०० मन्दिर थे। इधर बिलोचस्थान में भी सारे हिन्दु ही थे। करनलटाड साहेब का अनुमान है, कि अफगानिस्थान और बलोचस्थान में अधिकतर यादववंशी क्षत्रिय

बसे हुए थे। [illegible] कबाई में अब भी एक जाति जादों (यादव) नाम से [illegible] है। [illegible]िलोनियों का गोत्र नाम सामज का अर्थ साम्ब के [illegible] है, जो श्रीकृष्ण का पुत्र था, अथवा श्रीकृष्ण का भी एक नाम शाम (श्याम) था। और यह बात हम भविष्यपुराण के प्रमाण से दिखला चुके हैं, कि चन्द्रभागा साम्ब के राज्य में थी, इससे आगे उसका राज्य कहाँ तक था इसका पता नहीं, पर यह भविष्य में ही लिखा है, कि ईरान में वह स्वयं गया था और वहां के मगों को यहां लाकर बसाया भी था। करनल टाडसाहेब यह भी लिखते हैं, कि गजनी हिन्दु राजा गज का बसाया हुआ है, और मुसलमानों के आने तक वहाँ गज के वंशधर ही राज्य करते थे। कन्धार के राजे ब्राह्मण थे। कन्धार के सामन्तदेव ब्राह्मण राजा के ८०२ और ८१७ के सिक्के मिले हैं।

सो ईरान आदि को वश में कर मुसलमानों के अब इन शुद्ध हिन्दु प्रदेशों पर आक्रमण आरम्भ हुए। अफगानिस्थान और बलोचस्थान जीत लिए गये। मन्दिर तोड़े गये और हिन्दु मुसल्मान बनाये गये। इस समय तो अफगानस्थान और बलोचस्थान को देख कर हिन्दुओं को ध्यान भी

नहीं आता, कि ये भी कभी शुद्ध हिन्दु प्रदेश थे । और रुधिर की दृष्टि से अधिकतर हमारे ही पूर्वजों के वंशधर ये लोग हैं । फिर जब १००८ ई० में राजा जयपाल को पराजित करने के पीछे मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया, तो यहाँ भी उसी जोश को लेकर वे प्रविष्ट हुए थे, और उसी तरह यहाँ भी मूर्तियां तोड़ी गईं, मन्दिर लूटे गये, गुलाम बनाये गये । हिन्दुओं पर जज़िये लगाये गये भय, प्रलोभन और प्रचार से मुसल्मान बनाये गये, तथापि हिन्दुओं को अपने धर्म में जो महत्त्व दिखलाई देता था, वह उन्हें इसलाम में कदाचित् २ दिखलाई न दिया, अतएव वे इस प्रबल प्रतिकूल स्थिति में भी बहुत कुछ बच निकले, प्रत्युत वे मुसल्मानों को हिन्दु बना लेते, यदि उन्हें खुले प्रचार की आज्ञा होती । ऐसा न होने पर इसलाम और हिन्दु धर्म का जिस प्रकार मुकाबिला हुआ है, उस के कतिपय उदाहरण नीचे देते हैं। भविष्यपुराण प्रति सर्ग पर्व अध्याय ३ में मुसल्मानों का '**लिंगच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी सदूषकः । उच्चालापी** (=बांग देने वाला) **सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥ २५ ॥ विना**

कौलंच (=सूअर के बिना) पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम'''तस्मान्मुसलवन्तोहि जातयो धर्मदूषकाः ॥२७॥ इस प्रकार वर्णन करके और भोजराज के समय (१०५०) सिन्धुपार उनकी स्थिति दिखला कर, भोज की कुछ पीढ़ी पीछे उत्पन्न हुए राजा गंगासिंह का मुसल्मानों को शुद्ध करके हिन्दु बनाना इस प्रकार दिखलाया है—

अग्निहोत्रस्य कर्तारो गोब्राह्मणहितैषिणः ।
बभूवुर्द्वापरसमा धर्मकृत्यविशारदाः ॥८॥
द्वापराख्यसमः कालः सर्वत्र परिवर्तते ।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥९॥
ग्रामे ग्रामे स्थितोदेवो देशे देशे स्थितो मखः ।
आर्यधर्मकरा म्लेच्छा बभूवुः सर्वतोमुखाः ॥१०॥

अग्निहोत्र के करने वाले, गौ ब्राह्मण के हितैषी बन गये, लोग सब द्वापरयुग के समान धर्मी हो गये ॥८॥ सर्वत्र द्वापर जैसा समय आ लगा, घर २ में धन था, हर एक पुरुष धर्मी था ॥९॥ ग्राम ग्राम में देवता की स्थापना हुई और देश २ में यज्ञ होने लगा। म्लेच्छ पूरी तरह आर्यधर्म के

अनुयायी बने ॥१०॥ यह उस समय की बात है, जब मुसल्मानों का सिक्का नहीं जमा था। पर यह उन्हें हिन्दु बना लेने का कैसा स्पष्ट प्रमाण है। अब आगे चल कर शुद्धि को रोकने के जो कारण हुए, वह भी सुनिये।

३९८ हिजरी में महमूद ने सिन्ध के राजा सुखपाल पर, जो मुसल्मान हो कर अबूअली समजोई की कैद से छूटा था, और फिर मुरतिद (फिर हिन्दु) हो गया था, फौजकशी की और उस को फिर कैद किया, चुनाँचे वह कैद में ही मर गया (अबदलक़ादिर बदायूनी की किताब मुन्तख़िब अलतवारीख़)।

तारीख फिरिश्ता जिल्द अव्वल पृष्ठ २३६ पर लिखा है—एक ब्राह्मण **जोधन** नामी काथन ग्राम में रहता था। एक दिन उस ने मुसल्मानों के हजूर इक़रार किया, कि इसलाम सच्चा है, और मेरा भी धर्म सच्चा है। हाकिम ने उस को बादशाह सिकन्दरलोधी की खिदमत में संभल भेजा। इत्तिफ़ाक़ उलमा का (मौलिवियों की सर्वसम्मति) इस पर हुआ, कि इसको कैद करके अरज़ इसलाम कराना चाहिये। अगर इन्कार करे, उस की गर्दन मारें। जोधन

इन्कार करके मक़्तूल हुआ (जहाँ अपने धर्म को सच्चा कहने में भी मुसल्मानों की ओर से वधदण्ड हो, वहाँ मुसल्मानों को शुद्ध करके हिन्दु बना लेना क्या सर्वथा असम्भव नहीं हो गया था। क्या अब कोई संदेह है, कि शुद्धि क्यों बंद हुई)।

तारीख फरिश्ता जिल्द दोयम पृष्ठ ४४७ पर है—सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन वालिये कश्मीर ने हुक्म फरमाया, कि तमाम ब्राह्मण और हनूद (हिन्दुओं) के तमाम दानिशमन्द लोग मुसल्मान हो जाएँ, और जो शख़्स मुसल्मान न हो, वह कश्मीर से निकल जाय और तिलक न लगाय । बहुत से ब्राह्मणों ने जो न मुसल्मान बनना चाहते थे और न जलावतनी (=देशनिकाला) इख़्तियार करना चाहते थे, अपने आप को हलाक कर लिया और बअज़ जलावतन हो कर चले गए और बाक़ी मुसल्मान हो गए।

तारीख फीरोज़शाही फारसी पृष्ठ ३७९ से ३८१ तक एक घटना यह लिखी है—फीरोज़शाह तुगलक के ज़माने में एक ब्राह्मण ने देहली से बाहर एक मन्दिर की बुनियाद रक्खी। वहाँ सब हिन्दु और कई मुसल्मान पूजा करते।

एक मुसल्मान औरत वहां मुरतिद (शुद्ध) की गई। बाद-शाह को खबर हुई, तो उस ने हुक्म दिया, कि इस को ज़िन्दा जला दो। यहाँ आकर तारीख लिखने वाला शम-ससराज लिखता है । शाबाश बादशाह को कि उस ने शरअ़ की हद से हरगिज़ तजावज़ (उल्लंघन) न किया * । और इस मौक़ा पर फ़ख्र से यह शेअ़र लिखता है—

हम बुतां रा सोख्तह हम बुतपरस्तां रा बसोख्त।
हम बकुश्त आतशपरस्तां आतशेशां हम बकुश्त॥

बुतों को जला डाला और बुतपरस्तों को भी जला डाला। आतशपरस्तों (पारसियों) को भी मार डाला और उन की आग को भी मार डाला॥

---

* शाबाश इस ब्राह्मण को कि ऐसा भयावनी स्थिति में भी शुद्धि का उदाहरण हमारे लिए छोड़ ही गया । इस निष्पाप और शुद्धिप्रिय ब्राह्मण का रुधिर क्या आज कल के ब्राह्मणों को पुकार २ कर नहीं कह रहा है, कि मुसलमान हुए हिन्दुओं को चाहे वे कितनी पिढ़ियों से मुसलमान हैं, फिर शुद्ध कर लो। और दम न लो, जब तक कि अपने भाइयों को फिर अपने भाई न बनालो, सुनो ! सुनो ! ब्राह्मण भाइयो ! शुद्धि पर बलि होने वाले इस ब्राह्मण की पुकार को कान देकर सुनो और अमली उत्तर दो। स्मरण रक्खो ऐसे अनेक ब्राह्मणों के रुधिर तुम्हें पुकार रहे हैं।

एक और घटना सुनिये, जो एक ग्रेजुएट मुसल्मान की लिखी तारीख में वर्णित है—

“ राजा बेनीराव चम्पानीर किला (गुजरात प्रान्त) का हाकिम था । जब यह किला महमूदशाह हाकिम के हाथ में जाने को था, तो राजपूतों ने किले के अन्दर चिता बनाई । तमाम माल व असबाब मै बीवी व बच्चों के उस में रख कर आग लगादी । और जब मुतअलक़ीन से फारग लबाली हुई (अर्थात् जब बीबी बच्चों का क्या बनेगा यह चिन्ता मिट गई) तो राजा पर कुर्बान हो गए । राजा बेनीराव और उस का वज़ीर ज़खमों से चूर गिरफ्तार हुए । बादशाह ने नमाज़ शुकराना अदा की । ग्रिफ्तार बेनीराव बादशाह के सामने बुलाया गया और उस से सवाल हुआ कि ऐसी ज़बरदस्त फ़ौज के मुकाबिले में इतने दिन क्यों लड़ता रहा । बहादुर राजपूत ने जवाब दिया, कि इस ज़मीन पर मुझ को मौरूसी हक है । मेरे पेशरौ मुझ को यह सबक पढ़ा गए हैं, कि मैं उन के नाम पर धब्बा न आने दूं । लिहज़ा जब तक दम रहा, हम ने अबा व अजदा की हड्डियों की हिफाज़त की और खुदा का शुकर है, कि उन की पाक रूहें मुझ को आज बुज़दिल और कमहिम्मत

नहीं कह सकतीं । महमूद इस बहादुराना जवाब से बहुत खुश हुआ । राजा की मरदानगी की दाद दी और उस के इलाज का खास इहतमाम किया । बेनीराव ने गुसल सहत किया, तो बादशाह ने कोशिश की, कि राजा और उस का वज़ीर दोनों मुसल्मान हो जाएँ, तो यहां का इलाका इन्हीं के सुपुर्द कर दिया जाए । मगर दोनों ने इन्कार किया और कस्में खाईं, कि तबदीले मज़हब से मौत बदरजहा बेहतर है । बादशाह ने उन दोनों को अलग २ कैद कराया और असलाहेख्यालात की सई की (उनके ख्याल बदलने की कोशिश की) लेकिन उन का तअ-सुबे मज़हबी रोज़बरोज़ बढ़ता गया । यहां तक कि बअज़ अराकीने सल्तनत ने उन दोनों को कतल करा दिया और गुजरात की तारीख पर एक निहायत बदनुमा धब्बा लगा दिया । (तारीख शाहाने मालवा, मुअलफा अमीर अहमद साहेब उलवी बी० ए०)

हकीकतराय धर्मी और गुरुगोविन्दसिंहजी के साहेबजादों के उदाहरण तो अतीव प्रसिद्ध हैं । ऐसी दशा में जब कि हिन्दु धर्म के प्रचारक को इस लिए जान से मारा जाय, कि वह अपने धर्म को भी सच्चा कहता है, और जब हिन्दु से मुस-

ल्मान हुए हिन्दु को भी शुद्ध करने वाला ब्राह्मण मारा जाय, तब जन्म के मुसल्मानों को शुद्ध करके हिन्दु बना लेने का स्वप्न भी किस तरह कोई देख सकता था, तो भी हम हिन्दु धर्म के आचार्यों के इस बड़े साहस की सहस्रमुख से प्रशंसा किये बिना रह नहीं सकते, कि एक तो उन्हों ने मुसल्मानों से ऐसी घृणा उत्पन्न करादी, (जिस का कि बीज गोहत्या करने, मन्दिरों को ढाहने, मूर्तियों को तोड़ने, हिन्दुओं से काफिरों का सा बर्ताव रखने आदि से मुसल्मानों ने स्वयं अपने हाथों बो दिया था) कि हिन्दु चपड़ासी भी मुसल्मान नवाब से भी अपने को ऊँचा मान, उस का छुआ भी खाना अभक्ष्य समझने लगा, हिन्दुओं की उस समय रक्षा भी इसी में थी। और दूसरी ओर पतित हिन्दुओं को फिर शुद्ध कर लेने और अवसर पाकर जन्म के मुसल्मानों को भी शुद्ध कर लेने के अपने पुराने भाव को भी यथाशक्य बराबर जारी रक्खा, जैसा कि इतिहास बतलाता है—

खुलासा अल् तवारीख (जो मुन्शी अलमनाशी सुजा-नराय भंडारी वासी बटाला ने औरंगजेब के समय लिखी है और गौरमिन्ट के पुरातत्त्वानुसन्धान की ओर से अह-

कर अल अबाद ज़फ़रहसन बी० ए० ने छपवाई है) में आया है—

सुल्तान ज़ैद अल् आबदीन उर्फ़ शाही ख़ान मुज़फ़र व मनसूर जब गद्दी पर बैठा, तो उसने अपनी हिन्दु प्रजा की ओर अच्छा बर्ताव किया। और ब्राह्मण जो कि उस के पिता सुल्तान सिकन्दर के काल में जलावतन हुए थे, फिर आकर आबाद हुए और उनको अपने घर और मन्दिर वापिस मिल गये और—'व जमईए ब्रिह्मनां कि दर ज़माने सिकन्दर बज़ोर व अकरः मुसलमान करदः बूदन्द अज़ इसलाम बरगश्तह बाज़ रसूमे हनूद दरपेश गिरफ्तन्द' अर्थात् वे सारे ब्राह्मण जो कि सिकन्दर के ज़माने में ज़ोर और ज़ुल्म से मुसलमान किये गये थे, इसलाम से फिर गये और फिर हिन्दु बन गये।

यह है तनिक भी अवसर मिलने पर फिर शुद्धि और यह है मुसल्मानी धर्म के मुकाबिले में हिन्दु धर्म का महत्त्व कि देर तक मुसल्मान रहने पर भी, और हिन्दु रहने की अपेक्षा मुसल्मान होने में अधिक रिआयतें पाकर भी, उन के हृदय में हिन्दु धर्म का ही महत्त्व जमा रहा॥

शोक से कहना पड़ता है, कि मुसल्मान हिन्दुओं पर विजय पाकर भी अपने मज़हबी तअस्सुब के कारण उन के

दिलों को नहीं जीत सके, प्रत्युत उन में ऐसी घृणा उत्पन्न करा दी, कि यदि कोई मुसल्मान बादशाह उन से अच्छा बर्ताव करता, तो उन की समझ में नहीं आता था, कि मुसल्मान भी ऐसा बर्ताव कर सकता है, अतएव ऐसे भद्र पुरुषों के लिए वे कोई गुप्त कारण मान लेते थे, जैसा कि इसी तवारीख में ज़ैन उलआबदीन के विषय में लिखा है, कि 'हिन्दुओं के साथ उसकी ऐसी रिआयतों का कारण यह था, कि सुल्तान हिन्दु योगियों पर बहुत विश्वास रखता था, कहते हैं कि सुल्तान एक बार बहुत बीमार हुआ और मरने के निकट पहुँचा, जब जीने की कोई आशा न थी, एक योगी हाज़िर हुआ 'चूं रूहे सुल्तान मफारकत करद जोगी बइल्मे ज़िला बदन कि मीदानिस्त, रूहे खुदरा बरावरदः दाखिले कालिबे सुल्तान नमूद, व बरखास्ते नज़दीकां सुल्तान रा तनदुरुस्त व सही अलमज़ाज व जोगी रा मुरदः व बेजान दीदन्द, व मुरीदश कालिबे ओ रा दरां मकां कि ओ बूद बुरदः निगाह दाश्त व कालिबे सुल्तान कि रूहे जोगी दरो दाखिल शुदः बूद, सल्तनत मी करद व अर्ज़ी जहत रिआयते दीने हिन्दुआँ करदः दीने आँहारा रवाज मीदाद' अर्थात जब सुल्तान की रूह जुदा हुई, तो योगी ने दूसरे के शरीर में प्रवेश की विद्या से, जिसे कि वह जानता था, अपनी रूह

को निकाल कर सुल्तान के शरीर में दाखिल कर दिया, और पास के लोगों ने सुल्तान को स्वस्थ और प्रकृतिस्थ और योगी को मुरदा और बे जान देखा और उस के मुरीद उस के शरीर को कि जिस मकान में वह रहता था उठा ले गये और उस की रखवाली की और सुल्तान के शरीर ने जिस में कि आत्मा योगी का दाखिल हो गया था, सलतनत की और इस कारण से हिन्दुओं के के दीन की रिआयत की और उन के दीन को रवाज दिया'। इस सुल्तान ने राज्य भी ४८ वर्ष किया है। इसी प्रकार अकबर के भले बर्ताव का कारण भी भविष्य पुराण में यह बतलाया है।

ब्रह्मचारी मुकुन्दश्च शंकराचार्यगोत्रजः ।
प्रयागे च तपः कुर्वन् विंशाच्छिष्यैर्युतः स्थितः ।९।
बाबरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवताः ।
भ्रंशिताः स तदा ज्ञात्वा वन्हौ देहं जुहाव वै ।१०।
तस्य शिष्या गता वन्हौ म्लेच्छनाशनहेतुना ।
गोदुग्धे च स्थितं रोम पीत्वा स पयसा मुनिः ॥११

मुकुन्दस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनौ बभूवह ॥१२॥
जातमात्रे सुते तस्मिन् वायुवाचाशरीरिणी ।
अकस्माच्च वरो जातः पुत्रोऽयं सर्वभाग्यवान् ॥१३
पैशाचे दारुणे मार्गे न भूतो न भविष्यति ।
अतः सोऽकबरो नाम होमायुस्तनयस्तव ॥१४॥

(भविष्य पु० प्रति पर्व० अ० २१)

शंकराचार्य के गोत्र में उत्पन्न हुआ एक मुकुन्द ब्रह्मचारी अपने बीस शिष्यों समेत प्रयाग में तपस्या किया करता था । उस समय म्लेच्छराज **बाबर** ने कुछ देव मूर्तियां तोड़ीं, यह जान मुकुन्द ने म्लेच्छों के नाश के कारण अपना शरीर अग्नि में होम दिया उस के शिष्यों ने भी ऐसा किया, पर गौ के दूध में उस ने रोम पी लिया था, इस दोष से वह म्लेच्छ योनि में उत्पन्न हुआ । उस पुत्र के उत्पन्न होने पर आकाशबाणी हुई, कि यह अकस्मात् श्रेष्ठ हुआ है भाग्यवान् है, इस दारुण मार्ग (इसलाम) में ऐसा 'न भूतो न भविष्यति' इस लिये हे हेमायु (हमायूं) यह तेरा पुत्र अकबर (अकस्मात् वरः=अकबरः) हुआ ।

अस्तु प्रकृतमनुसरामः । कोकन के एक ब्राह्मण को, हैदरअली ने अपनी छावनी में राजनैतिक कैदी के तौर पर नज़रबंद रक्खा था । जब वह छूट कर आया, तो लोगों को संदेह हुआ, कि उस ने अपनी जान बचाने के लिए मुसल्मानी धर्म स्वीकार किया होगा । इस पर सब ब्राह्मणों की सम्मति और सरकार की आज्ञा से राजव्यवस्था से वह ब्राह्मण धर्म में मिलाया गया ।

(Rise of the Maratha Power by Rennede)

फीरोज़शाह बहमनी का बीजानगर के राजा देवराय के साथ युद्ध हुआ । इस में दो हज़ार से अधिक ब्राह्मण लड़कियां गिरफ्तार हुईं । ब्राह्मणों ने राजा से बिनति की, कि उन को मुसल्मानों से छुड़ाइये । राजा ने दसलाख हुन ज़र फिदिया देकर लड़कियों को छुड़ाया और उन के पितरों के हवाले किया (देखो वाकिआत मम्लकत बीजापुर हिस्सा सोयम)

वापिस लेने से ही यह स्पष्ट है, कि वे शुद्ध करली गईं ।

छत्रपति शिवाजी महाराज ने समर्थ गुरुरामदास जी की आज्ञा लेकर बीजापुर की सेना के बहुत से मुसल्मानों को हिन्दु बनाया । और धर्म सचिव पण्डितराव की अध्य-

क्षता में एक प्रायश्चित्त विभाग नियत किया । 'वाजीराव निम्बालकर' एक तअलुकादार बीजापुर बादशाह के दरबार में रहता था । बादशाह की ओर से उस पर कोई अपराध लगा । निश्चित हुआ कि मुसलमान हो जाय, तो उस पर से अभियोग हटा लिया जाय और बादशाह की लड़की भी उसे विवाह दी जाय, वह मुसलमान हो गया। समय पाकर निम्बालकर जब फलटन में अपनी जागीर पर आया, तो उसे शिवाजी की माता जीजीबाई ने धर्मसचिव पण्डितराव की व्यवस्थानुसार शुद्ध करके फिर हिन्दु बना लिया। मरहट्टों ने इसी प्रकार कई शुद्धियां कीं । द्वितीय पेशवा वाजीराव ने, जो कुलीन ब्राह्मण था, हैदराबाद के नवाब की कन्या 'मस्तानी' से विवाह किया और उसकी कुक्षि से जन्मे पुत्र शमशेर बहादुर का ब्राह्मणोचित यज्ञोपवीत संस्कार कराने का भी यत्न किया था ।

'गंगाधर रघुनाथ हरसूल का रहने वाला मुगलों के पास नौकर था । उस को मुगलों ने जबरदस्ती मुसल्मान बना लिया, फिर उस की खूब उन्नति हुई, उस के पास पर्याप्त धन भी इकट्ठा हो गया, पर उस के मन में धर्म की ज्वाला थी, वह रामगढ़ को भाग आया और सम्भा जी

से आकर हिन्दु बनने की उस ने इच्छा प्रकट की, उस के लिए प्रायश्चित्त निश्चय हुआ और वह यह था, कि ३६० वार एक पवित्र पहाड़ी का चक्र काटे और दूर २ के तीर्थों की यात्रा करे। तब सम्भा जी ने उस को ब्राह्मण बनाया और कई पण्डितों ने शुद्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये। तब सम्भा जी ने आज्ञा दी, कि अब यदि कोई उस के ब्राह्मण होने में शंका करेगा, तो वह न केवल ब्राह्मणों अपितु देवताओं की भी हतक करेगा। (मरहट्टा हिस्टरी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८, ५९ किनकैड और पारसलैस प्रणीत)।

सोलहवीं शताब्दी में जब सिन्ध के मुसलमानी हमले से भट्टी राजपूत मुसलमान बना लिये गये थे, तब जैसलमेर के भाटी राजपूत राजा जैतसिंहजी ने काशी से पण्डितों को बुलाकर एक बड़ा यज्ञ रचाकर 'जैतबन्ध' बन्धवाया, जो अब तक विद्यमान है। इस यज्ञ में जो कोई मुसलमान आगया और जैतबन्ध में स्नान कर गया, वे सब हिन्दु बना लिये गये। यह शुद्ध हुए भाटी राजपूत अब श्रेष्ठ राजपूत माने जाते हैं, और इनके साथ विवाह सम्बन्ध करते हैं। (शुद्धि-समाचार)

मारवाड़ के इतिहास से पता लगता है, कि राजपूत मुसल्मानियों को विवाह लेते रहे हैं, जोधपुर के महाराज 'गजसिंह' ने शाहजहाँ के प्रसिद्ध वज़ीर 'असदखाँ' की बीबी 'अनारां' छीन कर अपनी पत्नी बना ली थी। मारवाड़ के राजा राव रायपालजी ने ६०० मुसल्मानियों के विवाह अपने सरदारों और नौकरों से कराये। मारवाड़ के 'खेड़' राजपूत सिन्ध के मुसल्मान अमीरों की लड़कियां जीत लाते थे, तो उन से विवाह कर लेते थे। एक बार मारवाड़ में श्रावण की तीज को स्वच्छन्द खेलती हिन्दु लड़कियों को सिन्धु के मुसल्मान उड़ा ले गये। इस का बदला लेने के लिए राजपूत जाकर मुसल्मान नवाबों वा अमीरों की लड़कियां ले आये। अमीर की लड़की को छुड़ाने के लिए उस का भाई 'घुड़ेल खाँ' मुसल्मानी फौज लेकर कुँवर जगमाल से लड़ने आया। मुसल्मान हार खाकर भाग गये, घुड़ेलखां मारा गया। उन की बहिन अमीरज़ादी ने अपने हिन्दु पति से प्रार्थना की, कि मेरे भाई की यादगार बनवा दी जाय। कुँवर साहेब ने स्वीकार किया, और तब से राजपूताने में 'गणगोरियों' के प्रसिद्ध मेले में 'घुड़ल्यो घुमेलो' का खेल जारी हुआ, और अब

तक लड़कियां मिट्टी की हांडी बना उस में छेद० कर उस के भीतर दीपक रख कर उसे घर २ लेजाती खेलती और गाती हैं। यह मारवाड़ियों का मुसल्मानों पर उस विजय का द्योतक है । उदयपुर के महाराणा 'कुम्भा' नागौर और मालवे से मुसल्मानियों को पकड़ लाये थे, उन के विवाह हिन्दुओं से करा दिये, इसके श्लोक मिलते हैं (शुद्धि)

कविराज श्यामलदास वीरविनोद में लिखते हैं, कि 'जगमाल जी' की इस मुसल्मानी पत्नी से उत्पन्न हुई सन्तान मालानी प्रान्त की मालिक हुई, वे मालानी के राठौर कहलाये और अब तक उन का खान पान विवाह शादी मारवाड़ के राठौरों के साथ होता है ।

मिरज़ा अबदुलकादिर साहेब औरङ्गज़ेब के समय में साठ वर्ष की आयु में महात्मा विठ्ठलदास की कृपा से मधुपुरी में हिन्दु बने, और उन्होंने अपना नाम चन्द्रनयन रक्खा । वे कवि भी थे, उन्होंने फारसी की रामायण भी लिखी ।   (मिलाप १९२४)

सालिस्ट और बेसन में नव मरहट्टा पाये जाते हैं । ये कई पीढ़ियों तक ईसाई रहे । बाबा रामचन्द्र जोशी ने १८२० ई० में इनको शुद्ध किया, और उनको प्रायश्चित्त

के लिए १२००) अदा करना पड़ा। १२ नवम्बर १८२१ में इन्हीं प्रान्तों के कई ईसाइयों को विठ्ठलहारी नामक वैद्या ने शुद्ध किया । • (Tribes and cast of Bombay Vol. I)

इधर तो इसी प्रकार फुटकर शुद्धियां बराबर होती रही हैं, दूसरी ओर हिन्दू-धर्माचार्यों ने तो शुद्धि के लिए परिस्थिति से बढ़कर साहस दिखलाया है । भविष्य में आया है, कि मुसलमानों ने सातों पुरियों में जब मसजिदें बनालीं, और हिन्दुओं को मुसल्मान बनाने लगे, तब—

महत्कोलाहलं जातमार्याणां शोककारणम् ॥५०॥
श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्णचैतन्यसेवकाः ।
दिव्यमन्त्रं गुरोश्चैव पठित्वा प्रययुः पुरीम् ॥५१॥
रामानन्दस्य शिष्यो वा अयोध्यायामुपागतः ।
कृत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयत् ॥५२॥
भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत् ।
कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता ॥५३॥
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः ।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया रामानन्दमते स्थिताः ॥५४॥

आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे ।
निम्बादित्यो गतो धीमान् सशिष्यः काञ्चिकां पुरीम् ।
म्लेच्छयन्त्रं राजमार्गे स्थितं तत्र ददर्श ह ॥५५॥
विलोमं स गुरोर्मन्त्रं कृत्वा तत्र स चावसत् ।
वंशपत्रसमा रेखा ललाटे कण्ठमालिका ॥५६॥
गोपीवल्लभमन्त्रो हि मुखे तेषां रराज ह ।
तदधो ये गता लोका वैष्णवाश्च बभूविरे ॥५७॥
म्लेच्छा संयोगिनो ज्ञेया आर्यास्तन्मार्गवैष्णवाः ।
विष्णुस्वामी हरिद्वारे जगाम स्वगणैर्वृतः ॥५८॥
तत्र स्थितं महायन्त्रं विलोमं तच्चकार ह ।
तदधो ये गता लोका आसन् सर्वे च वैष्णवाः ॥५९॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विरेखाभं तन्मध्ये विन्दुरुत्तमः ।
ललाटे च स्थितं तेषां कण्ठे तुलसीगोलकम् ॥६०॥
मुखे माधवमन्त्रश्च बभूव हितदायकः ।
मथुरायां समायातो मध्वाचार्यो हरिप्रियः ॥६१॥
राजमार्गे स्थितं यन्त्रं विलोमं तच्चकार ह ।

तदधो ये गता लोका वैष्णवास्तत्पक्षगाः ॥६२॥
करवीरपत्रसदृशं ललाटे तिलकं शुभम् ।
स्थितं नासार्धभागान्ते कण्ठे तुलसिमालिका ॥६३॥

बड़ा कोलाहल मच गया, जो आर्यों के बड़े शोक का कारण हुआ ॥५०॥ आर्यों के उस कोलाहल को सुन कर कृष्णचैतन्य के सेवक वैष्णव । गुरु के दिव्य मन्त्र का जप कर पुरी में गये ॥५१॥ रामानन्द का एक शिष्य अयोध्या में आया । अपने गुरु के मन्त्र को विलोम करके उसने मुसलमानों को वैष्णव बनाया ॥५२॥ उनके माथे पर त्रिशूल के चिह्न वाला श्वेत लाल तिलक, गले में तुलसी माला और जिह्वा राममयी बनादी ॥५३॥ रामानन्द के प्रभाव से वे मुसलमान वैष्णव बन गये । रामानन्द के मत में आये मुसलमान वैष्णव संयोगी वैष्णव (मिलाये हुए वैष्णव) कहलाये ॥५४॥ और जो आर्य वैष्णव थे, वे उनके मार्गदर्शी (राहबर) बने । बुद्धिमान् निम्बादित्य अपने शिष्यों समेत कांचीपुरी में गया, वहां उसने राज-मार्ग में म्लेच्छों का यन्त्र देखा ॥५५॥ अपने गुरु के मन्त्र को विलोम करके वहां उनमें उसने प्रचार किया, माथे पर बांस के पत्ते के तुल्य तिलक की रेखा, गले में कण्ठी

॥५६॥ और उनके मुख में कृष्ण मन्त्र शोभा देने लगा, उसके असर में जो लोग आये, वे वैष्णव होगये, जो म्लेच्छ थे वे संयोगी वैष्णव (मिलाये गये वैष्णव) कहलाये, और जो आर्य थे वे मार्ग दर्शी वैष्णव (रस्ता दिखलाने वाले वैष्णव) कहलाये । विष्णु स्वामी अपने शिष्यों को लेकर हरिद्वार में पहुंचा ॥५८॥ वहां उसने बड़े यन्त्र को विलोम किया, उसके असर में जो लोग आये वे सब वैष्णव होगये ॥५९॥ उनके माथे पर दो रेखा वाला उर्ध्वपुण्ड्र तिलक जिसके मध्य में सुन्दर बिन्दु था, और गले में तुलसी की माला ॥६०॥ और मुख में कल्याणकारी श्रीकृष्ण नाम । मथुरा में मध्वाचार्य पहुँचे ॥६१॥ उन्होंने राजमार्ग में स्थित यन्त्र को बिलोम किया, जो लोग उनके असर में आये, वे सब उनके अनुयायी होकर वैष्णव बने ॥६२॥ उनके माथे पर कनेर के पत्ते के सदृश तिलक होता है, जो आधे नाक तक जाता है, गले में तुलसीमाला, और मुख में राधाकृष्ण का शुभनाम ॥६३॥

इसी प्रकार आगे भिन्न २ नगरों में भिन्न २ वैष्णव और शैव प्रचारकों का काम दिखलाते हुए बतलाया है कि उन्होंने म्लेच्छों को शैव और वैष्णव बनाया । और इसी प्रकरण में आया है—

कबीरो मागधे देशे रैदासस्तु कलिञ्जरे ।
सधेना नैमिषारण्ये समाधिस्थो बभूव ह ॥७८॥

मगध में कबीर, कलिञ्जर में रैदास और नैमिषारण्य में सधन ने प्रचार किया ।

बंगाल में **श्री चैतन्य** का मुसल्मानों को वैष्णवधर्म में मिलाना इतिहासप्रसिद्ध है । श्री चैतन्य का प्रसिद्ध शिष्य हरिदास मुसल्मान से हरिदास बना था । श्रीनिवासाचार्य के बहुतेरे मुसल्मान शिष्य भी थे । जान्हवी देवी ने भी बहुत से मुसल्मानों को हिन्दू किया ॥

'जमालुद्दीन', जो एक उत्तम कवि भी था, १६२५ के लगभग वैष्णव बना । अपनी कविता में उसने श्रीकृष्ण की बड़ी महिमा गाई है, जिस में वह अपना नाम जमाल लिखता है—

इत आवत उत जात हैं भक्तन के प्रतिपाल ।
बंसी बजावत कदम चढि कारण कौन जमाल ॥

इस प्रकार मुसल्मानी ज़माने में भी हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय उदार हृदय से अपने २ धर्म का प्रचार म्लेच्छों में करते और उनको हिन्दु बनाते रहे हैं ।

एक रहस्य—मुसल्मानों ने दूसरी जातियों को मुसल्मान बना लेने के जो उपाय बर्ते थे, वे सारे ही ब्राह्मणों और उन के अनुयायी हिन्दुओं को मुसल्मान बनाने के लिए भी वर्ते तो गये, पर ब्राह्मणों और उन के अनुयायी हिन्दुओं में अपने धर्म पर जो विश्वास था, उस की टक्कर ने मुसल्मानों का मुँह मोड़ दिया। ऐसे हेतु हैं, जिन से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं, कि यदि ब्राह्मणों को खुले प्रचार की आज्ञा मिल जाती, तो वे घर में आये सभी मुसल्मानों को हिन्दुधर्म में दीक्षित कर लेते। इस के विपरीत सारी परिस्थिति हिन्दुधर्म के प्रातिकूल और मुसल्मानों के पूरा २ अनुकूल होने पर भी वैदिक-हिन्दुओं को तो वे कहीं टावाँ टावाँ ही मुसल्मान बना सके हैं। और कारणवश मुसल्मान हो जाने पर भी हिन्दुधर्म ने ही उन के हृदयों को मोहित रक्खा था, जिस का उदाहरण मलकाने मूले आदि कई जातियां अब भी विद्यमान हैं। मुसल्मानों को वास्तविक सफलता प्राप्त हुई बौद्ध-हिन्दुओं पर। मध्य एशिया के लोग बौद्ध थे। वे सब से पहले मुसल्मान हुए। अफगानस्थान के हिन्दु अधिकतर बौद्ध थे, वे भी मुसल्मान हुए। देहली

मुसल्मानों का केन्द्र था ७०० वर्ष वहाँ इन का बल रहा, पर वहाँ मुसल्मान बहुत नहीं फैल सके, किन्तु बङ्गाल जो केन्द्र से दूर परे था, वहाँ बहुत फैले । कारण यह है कि देहली ब्राह्मणधर्म का केन्द्र था, और बङ्गाल बौद्धधर्म का, जैसा कि इतिहास बतलाता है—

"पालवंश के राजाओं ने बङ्गाल और बिहार में ४५० वर्ष राज्य किया, वे सब के सब बौद्धधर्म के पक्के भक्त और संरक्षक थे । उन्हों ने इन प्रान्तों में अनेक विहार आदि बनवाये, और मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व वहाँ तान्त्रिक-बौद्धधर्म प्रचलित था । बारहवीं शताब्दी के अन्त में बख्तयार खिलजी और उस के पुत्र मुहम्मद ने बङ्गाल, बिहार को विजय किया । इतिहास के विद्वान् बड़े आश्चर्य से इस घटना का वर्णन करते हैं, कि जहाँ भारत के प्रत्येक भाग में मुसल्मानी आक्रमणों का पूरे ज़ोर से मुकाबिला किया गया । ऐसा प्रतीत होता है, कि बङ्गाल में उन का किसी ने सामना नहीं किया । मुहम्मद खिलजी ने केवल २०० घुड़सवारों की सहायता से राजधानी पर कब्जा कर लिया ।"

इस के आगे वर्णन है "सहस्रों भिक्षुओं का कतल

आम किया गया । इस का परिणाम यह हुआ, कि बौद्ध-धर्म अपने प्राचीन घर में भी नाश हो गया । थोड़े से भिक्षु भाग कर तिब्बत, नैपाल और दक्षिण को चले गए । ”

इस से स्पष्ट है, कि बङ्गाल में बौद्धों का ज़ोर था । वे मुसलमानों के सामने वैदिक-हिन्दुओं की नाईं नहीं अड़े । आसानी से जीते गये । भिक्षु कतल किये गये, और गृहस्थ बौद्ध मुसल्मान किये गये । इस से आगे ही आसाम के विषय में, जहाँ कि हिन्दु-बल था, यह लिखा है—

“आसाम में हिन्दुधर्म था । आसाम पूर्वी भारत का एक विशाल द्वार है, जिस के द्वारा चीन की मङ्गोल जाति का प्रवाह भारत की ओर बहता रहा है । यहाँ के लोग शाक्त हिन्दुधर्म के अनुयायी रहे हैं । आसाम के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है, कि किस योग्यता से ब्राह्मण पुरोहितों ने बाहर से आई हुई अनार्य-जातियों के ऊपर क्रमशः अपना प्रभुत्व जमाया, और उन्हें अपने धर्म की ओर आकर्षित कर **हिन्दुधर्म के विशाल भुवन में** उन्हें स्थान दिया । शुद्धि और समावेश (अपने अन्दर जज़ब कर लेने) के विविध उपाय बर्ते गये, और इस में उन्हें पूरी सफलता हुई । ”

"इस प्रकार वहां हिन्दुधर्म का ही ज़ोर रहा। आसाम ही भारत का एक ऐसा प्रान्त है, जहां के वासियों ने बड़ी सफलता से मुसलमानी धावों के प्रवाह को रोका और शत्रुओं के अनेक प्रयत्नों के होते हुए भी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की। जिस मुहम्मद ने बंगाल बिहार को इतनी सुगमता से जीत लिया था उसे भी आसाम से वापिस भागना पडा, और यह पराजय उसके लिए सत्यानाश करने वाला सिद्ध हुआ। कामरूप के निवासियों ने उसके रस्ते रोक दिये। पुल तोड़ दिये और उसकी सारी सेना डूबगई। वह स्वयं केवल १०० सवारों के साथ तैर कर बचनिकला। परन्तु इस पराजय के कारण ही वह बीमार होगया और कतल किया गया। इसके पीछे कई मुसल्मानी आक्रमण हुए और वे भी इसी प्रकार निष्फल हुए। औरंगजेब के समय में जब मीरजुमला ने आसाम पर आक्रमण किया तो उसकी सेना के साथ आया हुआ एक मुसलमान ऐतिहासिक लिखता है, आसाम के निवासियों से सब लोग भय खाते थे Early History of India by V. A Smith, इसीप्रकार कम्बोदिया जो वैष्णव हिन्दुओं का उपनिवेश था जिस के खण्डहरों में विष्णु के मन्दिर

और मूर्तियां अब भी हिन्दुओं के ऐश्वर्य का बता देती हैं, जब तक हिन्दु बना रहा, चारों ओर उसका सिक्का जमा रहा, जूं ही कि वे लोग बौद्ध हुए दुर्बल हो गये और उनकी पहली सारी ही महिमा लुप्त हो गई ।

पञ्जाब आदि प्रान्तों में भी अधिकतर वे लोग ही मुसल्मान हुए हैं, जो हीनजातियों के थे, शंकराचार्य के पीछे प्रायः इन हीनजातियों में ही बौद्ध धर्म का प्रचार रह गया था, और उनको भी ब्राह्मण धीरे २ हिन्दुधर्म में लारहे थे, जब कि मुसल्मानों के आक्रमण हुए। और सब से पहले वे हीमुसल्मान हुए। वैदिक हिन्दुओं से मुसल्मान हुए प्रायः वे ही हैं। जो अब शेख मलक आदि कहलाते हैं। यदि मुसल्मानों के आक्रमणों के समय अफगानस्थान बलोचस्थान और भारत में केवल वैदिक हिन्दु ही होते, तो किसी गरीब से गरीब हिन्दु को भी मुसल्मान बनाने में मुसल्मानों को पता लगजाता कि हिन्दुओं में से हर एक व्यक्ति मुसल्मान होने की अपेक्षा टुकड़े २ होकर कटमरना अत्युत्तम मानता है। वस्तुतः बौद्धों की दुर्बलता ने वैदिक हिन्दुओं के लिए एक अनिष्ट उदाहरण स्थिर कर दिया। अन्यथा हिन्दु न केवल धार्मिक तौर पर ही बचे रहते, किन्तु नैतिक

रूप में भी बहुत कुछ स्वतन्त्र रहते, और मुसल्मानों के कदम कभी न जमने देते। वह काम जो सेवाजी गुरु गोबिन्दसिंह जी और बन्दा वैरागी के समय आकर हुआ वह इससे बहुत पहले होचुका होता और आज हम भारत में एक ही हिन्दुधर्म की ध्वजा फहराती देखते। भगवान् अब भी ऐसा ही करें।

शुद्धि की पुनः प्रवृत्ति ।

श्री गुरुदेव—सज्जनो! शुद्धि के विषय में अपने पूर्वजों की प्रवृत्ति को जानने के पीछे अब तुम्हें अपनी वर्तमान अवस्था पर ध्यान देना अवश्यक है। सुनो, जिस हिन्दु धर्म को मनुष्यमात्र की भलाई का साधन जान उसे सार्वभौम बनाने के लिए हमारे बड़ों ने प्रयत्न किया था, और उस में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की थी, उसी सर्व हितकारी धर्म को हमारे प्रमाद से बहुत बड़ा धक्का लगा है। वे दिन तो अब स्वप्न ही हो गये, जब कि अफगानस्थान, बिलोचस्थान, कश्मीर आदि शुद्ध हिन्दुप्रदेश थे जावा सुमात्रा और कम्बोदिया आदि हिन्दु उपनिवेश थे। जिन को अब हिन्दु ऐसा भूले हैं, कि मानो कभी इतना धर्म बल उनका था ही नहीं। उसके उलट कहाँ अब ये दिन कि

मुख्य भारत भी शुद्ध हिन्दु प्रान्त नहीं रहा। मुख्य भारत के भी बहुतेरे हिन्दु हिन्दुओं से निकल कर विजातीयों में जा मिले और मिलते जा रहे हैं । देखो १९२१ की जन संख्या इस प्रकार है—

समग्र जन संख्या	३१८९४२४८०
हिन्दु	२१६७६५०००
सिक्ख	३२३९०००
बौद्ध	११५७१०००
जैन	११७८०००
मुसलमान	६८७३५०००
ईसाई	४७५४०००

इनके सिवाय कुछ और लोग भी हैं, जो उपर्युक्त जातियों से अलग माने जाते हैं, वे यहां छोड़ दिये हैं। इस अवस्था को देख कर जातिहितैषी हर एक हिन्दु अपने मन में सोच सकता है, कि हम कहाँ से कहाँ जा गिरे हैं। और हमारे विचार भी कितने परिवर्तित हो गये हैं, कि जहाँ बाहर से आई जातियों को हिन्दु बना लेने में देर नहीं लगने पाती थी, वहाँ अब यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा है, कि अहिन्दु हिन्दु हो भी सकते हैं, वा नहीं। यह सारा काल का प्रभाव है,

जिस काल में से हिन्दुओं को लंघना पड़ा है, उस में अपने स्वरूप को भूल जाना आश्चर्यकर नहीं । आश्चर्य तो यह है, कि ऐसे आपत्काल में भी वे अपने स्वरूप को सर्वथा नहीं भूले। और जैसा कि इतिहास से दिखला चुके हैं, कि घोर विपत्काल में भी हिन्दु समय पाकर हिन्दु धर्म के द्वार मुसल्मानों के लिए भी खोल देते रहे हैं। और यह बड़े हर्ष की बात है, कि जिस समय यह आपत्काल दूर हुआ, उसी समय से हिन्दु नेताओं का ध्यान इस उज्ज्वल धर्म की ओर बराबर बढ़ता चला आया है । सब से पहले जम्बू कश्मीराधिपति श्री महाराज **श्री रणवीरसिंहजी**, जो वर्तमान महाराज **श्री हरिसिंहजी** के पितामह थे, का शुभ ध्यान इस धार्मिक काम की ओर आकर्षित हुआ, और उन्हों ने बहुत सा धन लगा कर अपने योग्य पण्डितों से एक बहुत बड़ा ग्रन्थ तय्यार कराया, जिस का नाम "**रणवीर प्रकाश**" है । पण्डितों ने उस समय जो व्यवस्था दी, वह यह थी, कि जो हिन्दु से मुसल्मान हुए, वे प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो सकते हैं। और जिन द्विज जातियों के घरों से यज्ञोपवीत संस्कार लुप्त हो गया है, वे प्राय-

श्चित्त करके फिर यज्ञोपवीत धारण कर सकते हैं और वेद पढ़ सकते हैं । और जो विधर्मी (मुसलमान आदि) हैं, वे शैव वैष्णव आदि दीक्षाओं से दीक्षित हो कर हिन्दु धर्म में प्रवेश कर सकते हैं । जैसा कि उस में लिखा है—

मूलतो म्लेच्छादीनां वा सत्यामिच्छायां नास्तिक्यत्यागेन भक्तिशास्त्र प्रत्यभिज्ञाशास्त्र राममन्त्राद्युपदेश्यताधिकारः । शूद्र कमलाकरोक्तसंस्कारादि प्राप्तिश्चसिध्यती त्यत्र न कस्य चित्कटाक्षा वसरः इति सकलश्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिनिर्गलितो विमर्शो निष्पक्षपातधीभिः सुधी भिर्निपुणं विचारणीयः ।

(हिन्दुओं से पतित हुओं की तो शुद्धि होती ही है) किन्तु जो मूल से म्लेच्छ चले आ रहे हैं, उन की भी इच्छा हो तो म्लेच्छता के त्याग से भक्तिशास्त्र प्रत्यभिज्ञाशास्त्र और राम मन्त्रादि में उन का अधिकार है, और शूद्र कमलाकरोक्त संस्कारों के भी वे अधिकारी हो जाते हैं, इस बात में किसी को भी कोई कटाक्ष करने का अव-

सर नहीं, यह श्रुति स्मृति पुराण इतिहास आदि का निचोड़ है, ऐसा पक्षपात रहित विद्वानों को जानना चाहिये"। इस के थोड़े दिन पीछे **श्री स्वामि दयानन्द सरस्वती** जी महाराज ने वैदिकधर्म का झंडा खड़ा किया तो यह घोषणा दी, कि वैदिकधर्म का द्वार सब मनुष्यों के लिए खुला है। वैदिकधर्म परमात्मा का दिया हुआ धर्म है। उस के लाने वाले ऋषि हैं। अधिकारी मनुष्यमात्र हैं। ऋषियों ने मनुष्यमात्र को इसका भागी बनाया है। अब वह हिन्दुओं के पास उन ऋषियों से मिली हुई अमानत है, जिस के भागी मनुष्य मात्र हैं। इस अमानत रखने वालों की पूरी ज़म्मादारी है, किं वे लोगों के घरों में पहुँच २ कर उन को अपने भाग का भागी बनाएँ। स्वामी जी महाराज ने देहरादून में स्वयं एक खालिस मुसल्मान को शुद्ध आर्य बना लिया और उस का नाम अलखधारी रक्खा। स्वामी जी के पद चिन्ह पर चलते हुए आर्यसमाज ने भी कई शुद्धियां कीं और जन्म के मुसल्मान ईसाइयों को भी शुद्ध किया है और कर रहे हैं। सिक्ख तो इस धर्म में आर्यसमाज से भी आगे बढ़े हुए

हैं । उन के सामने तो कोई झिजक है ही नहीं। जैन भी अपने प्राचीन काल की तरह अब धर्म के द्वार फिर खोल रहे हैं । हिन्दु सभाओं ने भी इस विषय में अपना कर्त्तव्य पहचान लिया है । और सनातनधर्मी भी अपने इस पुराने उदारभाव को आदर दे रहे हैं । **पं० मदनमोहन मालवीय, पं० नेकीराम शर्मा** आदि कई एक महानुभाव डंके की चोट कह रहे हैं, कि हिन्दु धर्म सार्वभौम धर्म है। इस में दूसरी जातियों के प्रवेश में न पहले कभी रुकावट हुई है न अब कोई रुकावट हो सकती है। ये महानुभाव अछूतोद्धार का भी खुला पक्ष लेते हैं। ये किसी हिन्दु को अछूत देखना नहीं चाहते । हिन्दुओं के एक हिस्से पर से अछूतपन के अपमान को और दूसरे हिस्से पर से अपने ही भाइयों को अछूत बनाए रखने के कलंक को मिटा डालना चाहते हैं, उन के प्रयत्न फल ला रहे हैं। रिवाज के संस्कारों का और रिन्दु शास्त्रों के उदारभावों का इस समय संग्राम हो रहा है। भला हिन्दु शास्त्रों को प्रमाण मानने वाले सनातनधर्मी अपने शास्त्रों से किस प्रकार परे हट सकते हैं। कट्टर सनातनधर्मी सदाचारी शास्त्र पारंगत मीमांसा

धुरन्धर अप्पयदीक्षित श्रुति का नाम आते ही उस के सामने सिर झुका देता है और भुजा उठा कर भगवती श्रुति की घोषणा देता है—

अपिवा यश्चण्डालश्शिव इति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह भुञ्जीत।

(देखो पूर्व पृष्ठ ३२)

कट्टर से कट्टर सनातनधर्मी भी अपने शास्त्रों पर अप्पय दीक्षित की नाईं पूर्ण श्रद्धा रखता है, तब वह किस तरह शास्त्रीय उदारभावों से मुँह मोड़ सकता है। और क्या कोई ऐसा हिन्दु है जो इस जातीय अपमान को न समझता हो, कि दुनिया में किसी भी जाति का कोई मनुष्य अछूत नहीं समझा जाता, यह केवल हमारी ही अभागिनी जाति है, जिस के सात करोड़ सदस्य अछूत समझे जाते हैं। और क्या यह बात हमें शोभा देती है? कभी नहीं। अतएव पूर्वोक्त महानुभाव इस कलंक को अपने हिन्दु भाइयों के ऊपरसे सर्वथा मिटा देना चाहते हैं। किन्तु इनकी गति मन्द इसलिए है, कि ये अपने सनातनधर्मी संगठन के साथ इस काम को पूरा करना चाहते हैं। और उन में अभी तक बहुत से ऐसे भद्रपुरुष

भी हैं, जिन के अन्तःकरण रीतिरवाज के उन संस्कारों से संस्कृत हैं, जो आपत्काल आदि के कारण हिन्दुजाति में प्रचार पागये थे, अतएव वे अपनी शुद्ध भावना से इसी को परम धर्म मान रहे हैं। ज्यों २ शास्त्रीय उदारभाव उन के सामने खुलते जायँगे, और आचार से शास्त्र की प्रबलता उन के हृदयगत होगी, त्यों २ उन के आत्मा भी उसी बल को धारण कर लेंगे, जो उन के दूसरे भाइयों सामाजिक पुरुषों और सिक्खों में पाया जाता है। इसी के लिए मालवीय आदि महानुभावों का प्रयत्न है। हमारी पड़ोसी जातियाँ तो अपने भाइयों में से किसी को अस्पृश्य न ठहराएं, और हम स्वयं भी उन में से किसी को अस्पृश्य न मानें, पर अपने सजातीय भाइयों को अस्पृश्य मान लें। एक हिन्दु चमार तो हमारे लिए अस्पृश्य हो, पर मुसल्मान मोची स्पृश्य हो और वही हिन्दु चमार जब मुसल्मान मोची वन जाय, तो फिर हमारे लिए स्पृश्य हो जाय। भला कौन इस को न्याय्य मान सकता है। अतएव यह रवाजी संस्कार अब शास्त्र और न्याय के संस्कारों से जीता जा रहा है और बहुत जल्दी ही शास्त्र और न्याय के विजय का डंका वजने लगेगा। कारणविशेष से कालविशेष

के लिए प्रवृत्त हुआ रवाज चाहे कितना ही प्रबल संस्कार जमाले, पर शास्त्र के सम्मुख उस का कोई बल चल नहीं सकता । क्या मलकानों की शुद्धि में सनातन धर्मियों ने भाग लेकर इस बात को सिद्ध नहीं कर दिया, कि वे रवाज से शास्त्र को बढ़ कर प्रमाण मानते हैं । मलकानों के हृदय हिन्दु हृदय थे, पर वे जब एक बार मुसल्मान माने गये, तो मुसल्मानी राजबल के समय उन को कौन शुद्ध (मुसल्मानों के शब्दों में मुरतिद) कर सकता था। ऐसे शुद्ध हृदय के लोग मुसल्मानी बल से दूर पड़े होते, तो शुद्ध हो ही जाते, पर आगरा प्रान्त में तो मुसल्मानों का पूरा राजबल था, वहां उन्हें कौन मुरतिद बनाता और वे स्वयं भी कैसे मुरतिद बनते । सो रवाजन वे मुसल्मान बने रहे। मलकानों के विषय में सेन्सस रिपोर्ट में लिखा है।

Malkana...are converted Hindus of various castes belonging to Agra and the adjoining dis-joining districts. Their names are Hindu, they mostly worship in Hindu tamples : they use the salutation Ram-Ram, they intermarry amongst themselves only. अर्थात–मलकाना कई हिन्दु कौमों से मुसल्मान बनाई हुई जाति है, जो आगरा और उस के

आस पास के ज़िलों में रहती है। उन के नाम हिन्दुओं के से हैं और वह अधिकतर हिन्दु मन्दिरों में पूजा करते हैं, और एक दूसरे से मिलते समय राम २ कहते हैं और आपसदारी में शादी व्यवहार करते हैं।

यह देख राजपूतों ने अपने इन भाइयों को अपनाने का निश्चय किया, ये पहले ही शुद्ध होना चाहते थे, आर्यसमाज शुद्धि के लिए अग्रसर हुआ। सनातनधर्म सभा के लिए शुद्धि का यह नया रूप था। रवाज उन को हिन्दुओं से अलग ठहराता था, शास्त्र उन के भाव को देख कर हिन्दुओं का अंग ठहराता था। सनातनधर्म सभा ने शास्त्र का पक्ष लिया, और ऋषियों वाली सीधी सरल शुद्धि से ही ग्राम के ग्राम एक ही बार शुद्ध कर लिये। वही शुद्ध हिन्दु हृदय जब इन अछूत जातियों में पाया जाता है, तो यहां भी अवश्य-मेव शास्त्र का ही विजय होगा और हो रहा है। जो हिन्दु हैं, वे तो हिन्दु हैं ही, पर अब तो सनातनधर्म का द्वार उनके लिए भी खुल रहा है, जो अहिन्दु हैं। योग्य २ विद्वान खुले शब्दों में सनातन धर्म की इस महिमा को बतला रहे हैं। अभी थोड़े दिनों की बात है, कि कानपुर कांग्रेस के समय श्री ब्रह्मावर्त सनातन धर्म सभा के अधिवेशन के

प्रधान श्री पूज्य पण्डित रघुवरदयाल जी ने अपने भाषण में ये ओजस्वी वचन कहे हैं—

"इस धर्म (सनातनधर्म) ने अपने द्वार विशृंखल-रूप से मनुष्यमात्र के लिए खोल रक्खे हैं । इस में आने के लिए न किसी को कलमा पढ़ने की जरूरत है, न जल-प्रोक्षण की आवश्यकता, न खाना चाहिये, न सहभोजन । यहां आवश्यकता है हार्दिक शुद्धि और विश्वास की । यहां ज़रूरत है इस धर्म के नियमों के अनुसार अपना आचार व्यवहार बनाने की । और जब यह कर लिया तो स्वजातीय हो वा विजातीय, इस देश का हो वा किसी अन्य देश का, स्वभावतः हिन्दुसमाज में लीन हो जाता है । यही रास्ता था, जिस से सारे बौद्ध फिर सनातन धर्मानुयायी बन गये । यही द्वार था जिस से सैंकड़ों हजारों बल्कि लाखों ग्रीक पारद, शक और पारसीक देश निवासी भारतवर्ष में आये और हिन्दुजाति में लीन हो गये और कोई नहीं बता सकता कि वे अब कौन से हैं"।

अतएव यह निःसंदेह है, कि अब शास्त्रीय विचारों का प्रचार बढ़ेगा, और इस धार्मिक स्वतन्त्रता के काल में

हिन्दु सम्प्रदाय अपने धर्म के द्वार सब के लिए खोल देंगे और अपने पूर्वजों के भावों से हृदयों को उज्ज्वल कर फिर हिन्दु धर्म की महिमा को बढ़ाएँगे । श्रोतृगण ! इस बात का निश्चय करलो, कि इस प्रमाद की निद्रा में हमारे जितने भाई हम से बिछड़ गये हैं, उन को फिर हिन्दु बना लेने में ही हम अपने खोए हुए यश को वापिस ला सकते हैं और इस से आगे बढ़ कर जब धर्म का काम करें, तब हम ऋषि ऋण से उऋण हो सकते हैं। परमात्मा अपना आशीर्वाद दें, कि हम वैदिक धर्म की ऐसी ही सच्ची सेवा करने के योग्य हों । इस प्रकार अपने भाषण को समाप्त कर श्री गुरुदेवजी ने बाबू सतीशचन्द्र पर कृपा दृष्टि डाली । तब बाबू सतीशचन्द्र खड़े हुए ।

सतीशचन्द्र—भगवन् श्री गुरुदेव ! आप की कृपा से मेरे सब संशय मिट गये हैं । और मैं अपने पूज्य पिता के सारे परिवार की ओर से खड़ा हो कर हिन्दु धर्म में प्रवेश के लिए प्रायश्चित्त चाहता हूं ।

श्री गुरु०—संगत की क्या इच्छा है ।

सभी—धर्म की जय हो । हम सब शास्त्र की आज्ञा सिर पर धारण करते हैं । हम यह व्रत लेते हैं, कि आप

के इन उपदेशों का सारी हिन्दु जाति में प्रचार करेंगे, दलितों का उद्धार करेंगे और सभी जातियों के लोगों को शुद्ध कर हिन्दु धर्म में प्रविष्ट करेंगे । हमारे आने वाले प्रयत्नों का मंगलाचरणरूप यह शुद्धि आप के हाथों प्रारम्भ हो, हम सब सम्मिलित हैं ।

श्री गुरु०—बहुत अच्छा, बाबू सतीशचन्द्र महाशय आप के जो इष्ट मित्र बन्धु बान्धव हिन्दु धर्म में दीक्षित होना चाहते हैं, कल उन सब को अपने साथ लाइयेगा, आज हम वेदशास्त्रानुकूल देशकालानुसारिणी **शुद्धिपद्धति** तय्यार करेंगे, जिस का नाम **शुद्धि यज्ञ** होगा । कल यह शुद्धि यज्ञ आप सब को सुना दिया जायगा, और परसों इस शुद्धि यज्ञ का अराम्भ होगा । इस यज्ञ को हम और हमारी संतानें चलता रक्खेंगी, इस की अग्नि हमारी जाति में सदा प्रज्ज्वलित रहेगी, जिस से कि हमारे बड़ों की यह कामना पूर्ण हो—

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।

परमात्मा अपना आशीर्वाद दें, कि हम इस के पूर्ण करने में समर्थ हों ।